जैन पाठावली

पुस्तक 4

श्रेणी 4

प्रकाशक

श्री ग्रेटर बोम्बे वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ

संचालित

मातुश्री मणिबेन मणशी भीमशी छाडवा - धार्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रकाशन दिन

वीर संवत : 2550

विक्रम संवत : 2080

ई.स. : November 2024

प्रथम संस्करण

प्रत : 3000

ज्ञानार्थे : 50 ₹

प्राप्ति स्थान

श्री ग्रेटर बोम्बे वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ

:संचालित:

मातुश्री मणिबेन मणसी भीमशी छाडवा धार्मिक शिक्षण बोर्ड

Aaradhya one Earth

Gr floor, H wing, Naidu colony,

Pantnagar, Ghatkopar (East), Mumbai 400075

Office : 9702277914

Chhayaben Kotecha : 9029933775

Alpaben Mehta : 9820462132

E-mail : jainshikshanboard@gmail.com

website : www.jainshikshan.org

श्रुत स्तंभ

स्व.अनिलकुमार अमृतलाल मेहता (Universal Technoplast)
श्रीमती माधुरीबेन अनिलकुमार मेहता
राजेश अनिलकुमार मेहता सौ. ब्रिजल राजेश मेहता
मा. लोक राजेश मेहता मा. नम्र राजेश मेहता

सुरेन्द्रकुमार वृजलाल मेहता (जमाई) बैतुल
सौ. दिव्या सुरेन्द्रकुमार मेहता
चि. करण सुरेन्द्रकुमार मेहता चि.डो.देवांशी सुरेन्द्रकुमार मेहता

ज्ञानदान योजना में सहभागी बनकर,
ज्ञानप्रचार के कार्य में सहकार देनेवाले,
स्वयं के ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम करने वाले,
लोकोत्तर पुण्य का बंध करनेवाले परिवार का
धार्मिक शिक्षण बोर्ड बहुत-बहुत आभारी है।
आपके शुभ भावो की अनुमोदना करते हैं।

||नाणस्स सव्वस्स पगासणाऐ||

श्री ग्रेटर बोम्बे वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ

Shree Greater Bombay Vardhman Sthanakvasi Jain Mahasangh

: संचालित :

मातुश्री मणिबेन मणशी भीमशी छाडवा - धार्मिक शिक्षण बोर्ड

Matushree Maniben Manshi Bhimshi Chhadva Dharmik Shikshan Board,

Aaradhya one Earth - Gr floor, H wing,
Naidu colony, Pantnagar, Ghatkopar (East), Mumbai 400075

ज्ञानदान महादान

ज्ञान योजना

₹1,00,000/- श्रुतस्तंभ

₹51,000/- श्रुताधार	₹5,000/- श्रुतसहयोगी
₹25,000/- श्रुतप्रभावक	₹2500/- श्रुतसहायक
₹11,000/- श्रुतप्रेरक	₹1000/- श्रुतअनुमोदक

देश-विदेश के हजारों परीक्षार्थी श्रृंखला 1 से 25 की परीक्षा देकर अपना ज्ञान बढा रहे है। धार्मिक शिक्षण बोर्ड को सध्धर बनाने हेतु आप ज्ञानदान योजना के भागीदार बनिए और अन्यों को भी प्रेरित जरूर कीजिए.

धार्मिक शिक्षण बोर्ड को दान के लिए बैंकिंग विवरण

A/c Name : Shree Greater Bombay Vardhaman Sthanakvasi Jain Mahasangh

Bank Name : Bank of Baroda **Branch** : Ghatkopar East

IFSC Code : BARB0GHAEAS

A/c. No. : 70130100028329

चेक, ड्राफ्ट श्री ग्रेटर बॉम्बे वर्धमान स्था. जैन महासंघ के नाम से लिखे।

अतीत के पन्नों से

पूरे विश्व में आज कल प्रलोभन बढते जा रहे हैं। आज का मनुष्य सूर्योदय से सूर्यास्त तक नहीं, बल्कि सूर्योदय से मध्यरात्रि तक यंत्रवत् दौड़ रहा हैं। समय और विश्राम जैसे शब्दों ने उनके जीवन की शब्दावली को न जाने कबसे छोड दीया है। तब सवाल उठता है कि ये सभी प्रयास किसके लिए हैं ?

तो जवाब है कि सुख, समृद्धि, अखूट धन के लिए।

लेकिन क्या इतनी भागा-दौड़ी करने के बाद भी यह सब मिलता है ?

यंत्रयुग में शायद समृद्धि और धन मिल जाता है लेकिन जीवन यंत्रीकृत बन जाता है। सुख- शांति के पीछे पडने के बावजूद, सुख और शांति हमसे दूर ही रह जाती है। आज हर इंसान किसी न किसी तरह की तकलीफ से घिरा हुआ है। यदि इन सभी कष्टों से मुक्त होना चाहते हैं, तो केवल सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान का धर्म और धर्म की सच्ची समझ ही मदद कर सकती हैं।

इस स्थिति को जानकर, समझकर बुद्धिमान, दूरदर्शी बडों के मार्गदर्शन के अनुसार मातृश्री मणिबेन मणशी भीमशी छाडवा धार्मिक शिक्षण बोर्ड की स्थापना तारीख 30-07-1961 को बृहद मुंबई स्थानकवासी जैन महासंघ के नेतृत्व में की गई थी।

धार्मिक शिक्षण बोर्ड ने शुरु में स्थानकवासी जैन धर्म के 32 आगम से प्रेरित होकर, आगम सागर से मंथन करके, सरल भाषा में जैनों के, जैन धर्म आधारित ज्ञान को विकसित करने के लिए कक्षा 1 से 7 के लिए पाठयपुस्तकें तैयार की, ताकि इसे सरल भाषा में पढाया जा सके। इस पाठयक्रम को तैयार करने में पूज्य संत-सतीजीओं का अविस्मरणीय सहयोग प्राप्त हुआ।

धीरे-धीरे संघ के दूरदर्शी लोगों ने पाठयक्रम को विकसित किया। जिसके कारण आज बाल पाठावली एवं एक से पच्चीस श्रृंखला के पाठयक्रम तैयार हो गए हैं। आवश्यकता पडने पर नए संस्करण में परिवर्तन भी किए गए हैं। इसलिए अब हम कुछ बदलावों के साथ नये स्वरूप में इस पुस्तक को पुनःप्रकाशित कर रहे हैं। इसके पीछे

उद्देश्य यह है कि सभी युवा, बच्चे और वृध्ध इसमें शामिल हो सकें और अधिक से अधिक संख्या में लोगों को परमात्मा के धर्म से अवगत कराया जा सके।

समय के अनुसार क्रमिक विकास करते-करते आज संस्कार सिंचन से युक्त भावी पीढी के निर्माण के लिए धार्मिक शिक्षण बोर्ड कार्य कर रहा है।

पाठयक्रम तैयार करने में अनेक कल्याणकारी गुरु भगवंतों, गुरुणी भगवंतों का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। उस मार्गदर्शन के अनुसार अभ्यासु श्रावक श्राविकाओं ने अपना योगदान दिया हैं। हम उन सभी का अभिवादन करते हैं।

इस पाठयक्रम के कारण अब तक लाखों लोग परीक्षा के माध्यम से जैन धर्म के संस्कार को प्राप्त कर चुके हैं और भविष्य में भी अधिक से अधिक लोग इस पाठयक्रम से जुड़कर, संस्कार प्राप्त करके अपना भविष्य उज्जवल बनाए यही शुभ भावना और शुभकामनाएँ।

धार्मिक शिक्षण बोर्ड की गतिविधियॉ

1. जैन धर्म के ज्ञान के प्रसार के लिए जैनशाला और महिला मंडल की धार्मिक परीक्षाओं का आयोजन करने वाली संस्था।

2. परीक्षा के लिए आवश्यक पुस्तकों का प्रकाशन।

3. शिक्षकों और छात्रों का सम्मेलन आयोजित करके उन्हें पाठयक्रम की समझ देना।

4. श्रृंखला परीक्षाओं की पुरस्कार सभा आयोजित करना।

5. ज्ञानदाता शिक्षकों का अभिवादन।

6. बाल पाठावली एवं एक से पच्चीस श्रृंखला तक विस्तारित पाठयक्रम उपलब्ध और नई श्रृंखला का विकास।

7. जैन धर्म के गहन ज्ञान के साथ अनुभवी और कुशल ज्ञानदाता द्वारा धार्मिक और आध्यात्मिक शिबिरों एवम् ओनलाइन क्लासीस का आयोजन।

8. Technology के माध्यम से ओनलाइन, ओरल और लिखित परीक्षा हर साल जनवरी और जुलाई में आयोजित की जाती है।

9. वैश्विक परीक्षा का आयोजन, ओनलाइन प्रमाण पत्र और पुरस्कार वितरण।

इस पुस्तक में छद्मस्थ अवस्था के कारण जिनाज्ञा के खिलाफ कुछ भी लिखा गया हो, तो मिच्छामि दुक्कडम्।

अनुक्रमणिका

पृष्ठ क्रमांक

1. सूत्र खंड – 40 अंक

1. 1. श्रृंखला 1, 2 और 3 के संपूर्ण सूत्र विभाग का पुनरावर्तन – 15 अंक
2. कंठस्थ - सूत्र पाठ - प्रतिक्रमण के संथारा पाठ से 5 श्रमण सूत्र तक,
अर्थ - प्रतिक्रमण के 4, 5 पाठ और 99 अतिचार
3. पहले व्रत से आठवें व्रत तक प्रतिक्रमण पाठ, समझ के साथ - 25 अंक ____ 01

2. सामान्य समझ खंड - 20 अंक

1. 1. जीव की मोक्ष यात्रा ____ 18
2. 14 राजलोक ____ 26

3. तत्त्व और संस्कार खंड - 15 अंक

1. 35 बोल - संक्षिप्त विवरण के साथ ____ 35
2. 6 काय के बोल ____ 45

4. धर्म और विज्ञान – 5 अंक ____ 56

5. कथा खंड – 10 अंक

1. त्रिपुष्ठ वासुदेव ____ 59
2. गजसुकुमार ____ 63
3. सती चंदनबाला ____ 66

6. कविता खंड 10 अंक

1. रत्नाकर पच्चीसी संपूर्ण ____ 70
2. साधु वंदना (अध्याय 1 से 22) ____ 73
3. तीन मनोरथ ____ 75

श्रावक के बारह व्रत

श्रावक के व्रत को 'अणुव्रत' कहते हैं और साधु के व्रत को 'महाव्रत' कहते हैं।

अणुव्रत

महाव्रत की अपेक्षा में जो व्रत छोटे अर्थात् स्थूल हैं, जो व्रत कई आगार यानी कि छूट के साथ ग्रहण होते हैं, जो व्रत व्यक्ति की इच्छा और सुविधा के अनुसार सीमित समय के लिए या आजीवन ग्रहण किए जाते हैं, वह अणुव्रत हैं। साथ ही अणुव्रत का स्वीकार नौ कोटि से नहीं किया जाता, व्रत ग्रहण करने वाला अपनी परिस्थिति के अनुसार एक, तीन या छह कोटि से व्रत स्वीकार कर सकता हैं।

इस प्रकार अणुव्रत में कई प्रकार के आगार - छूट होते हैं, इसीलिए इसे अणुव्रत कहा जाता हैं।

प्रतिक्रमण सूत्र में श्रावक के बारह व्रत अणुव्रत रूप ही हैं, फिर भी, श्रावक के बारह व्रतों को पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत में विभाजित किया गया हैं।

प्रथम स्थूल प्राणातिपात विरमणं व्रत:-

प्राणातिपात = प्राण + अतिपात

जीव के दस प्रकार के द्रव्य प्राणों में से किसी भी प्राण का अतिपात याने कि नष्ट कर देना, उसे 'प्राणातिपात' कहते हैं।

जीव या आत्मा अमर हैं, वह नष्ट नहीं होता। अत: शास्त्रों में जीवातिपात जैसे शब्द का प्रयोग हिंसा के लिए नहीं किया गया हैं, बल्कि द्रव्य प्राणों को नष्ट किया जा सकता हैं, इसलिए प्राणातिपात शब्द का प्रयोग हिंसा के संदर्भ में किया गया हैं।

प्राणातिपात विरमणं - जीव हिंसा से विराम लेना, अटकना प्राणातिपात विरमणं व्रत कहलाता हैं।

श्रावक गृहस्थ होने के कारण हिंसा का पूर्णत: त्याग नहीं कर सकते, इसलिए वे अपनी वर्तमान स्थिति को समझते हुए कुछ आगार के साथ स्थूल प्राणातिपात विरमणं व्रत का स्वीकार करते हैं।

स्थूल प्राणातिपात विरमणं व्रत का विषय:-

श्रावक स्थावर जीवों की हिंसा की मर्यादा करते हैं एवं निरअपराधी और निर्दोष त्रस जीवों की इच्छा के साथ, जानबुझकर हिंसा का त्याग करते हैं एवं सूक्ष्म जीवों की हिंसा का भी त्याग करते हैं।

हमारे किसी भी हथियार से सूक्ष्म जीव नहीं मरते, फिर भी उन प्राणियों की हिंसा के आश्रव से बचने के लिए, अपनी करुणा की भावना को मजबूत करने के लिए सूक्ष्म जीवों को न मारने के लिए पच्चक्खान किए जाते हैं।

आगार :

श्रावक त्रस जीवों में भी अपने शरीर या स्वजन के शरीर को पीडा देनेवाले जीवों की और अपराधी जीवों की हिंसा की छूट रखते हैं। जैसे श्रावकों के पेट में कीड़े हो गए तो वे दु:खदायी होते हैं और यदि कोई चोरी आदि बुरा काम करता हैं तो उसे दंड या सजा देने की अनुमति हैं। साथ ही, श्रावक को जानबुझकर किसी भी त्रसजीव को मारने का पच्चक्खान होता हैं। अनजाने में हुई हिंसा के कारण श्रावक का व्रत भंग नहीं होता।

पच्चक्खान करण और कोटि:-

कोई भी पाप कर्म तीन प्रकार से होता हैं।

1. स्वयं करना, 2. दूसरों से करवाना 3. दूसरों के पापपूर्ण कार्य से प्रसन्न होना अर्थात् उसका अनुमोदन करना।

पाप कर्म - मन, वाणी और शरीर ये तीन साधनों से होते हैं।

- मन से करना, करवाना और अनुमोदन करना।
- वाणी से करना, करवाना और अनुमोदन करना।
- शरीर से करना, करवाना और अनुमोदन करना।

इस प्रकार तीन करण X तीन योग = नौ कोटि। इन नौ कोटि में से श्रावक को पहला व्रत छह कोटि से लेना होता हैं। मैं मन, वचन, शरीर से प्राणातिपात नहीं करुँगा और न ही करवाऊँगा। इन छह कोटि के साथ जीव हिंसा के पच्चक्खान होते हैं।

अनुमोदन के पच्चक्खान नहीं होते। क्योंकि, वे गृहस्थ जीवन या पुत्र-पारिवारिक मामलों से जुड़े होते हैं। अनेक हिंसक प्रवृत्ति की अनुमोदना सहज रुप से हो जाती हैं, अत: वह उस अनुमोदना का त्याग नहीं कर सकतें।

अतिचार:-

प्राणियों को विभिन्न प्रकार से कष्ट देना या पीडा देना, यह क्रिया प्रथम व्रत के अतिचार रूप हैं। इस में जीव मरते नहीं बल्कि कष्ट सहते हैं। जैसे किसी भी जीव को बिना कारण, द्वेष के कारण कैद करना, उसे पीटना, उसके अंगों को तोड़-फोड़ देना, उससे उसकी क्षमता से अधिक काम करवाना, उस पर अत्याचार करना या उसे खाने-पीने से रोकना (अंतराय लेना)।

ऐसी कोई भी गतिविधि करना श्रावकों के लिए त्याग करने योग्य हैं।

अतिचारों के स्वरुप को यथार्थ रुप से जानकर, उनका आचरण न करना ही स्थूल प्राणातिपात विरमणं व्रत की सच्ची आराधना हैं।

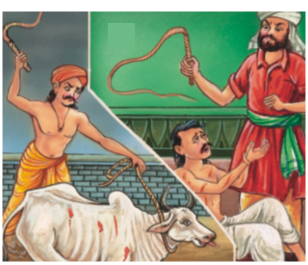

अपेक्षित प्रश्न:-

0-1. प्राणातिपात क्या है?

0-2. पहले व्रत में श्रावकों को क्या अनुमति हैं?

0-3. श्रावकों को अनुमोदना का त्याग क्यों नहीं होता?

0-4. अणुव्रत और महाव्रत में क्या अंतर हैं?

0-5. कोटि किसे कहते हैं? कोटि कितनी हैं?

द्वितीय स्थूल मृषावाद विरमणं व्रतः-

मृषावाद-झूठ बोलना - शास्त्रों में सत्य-असत्य को विस्तृत रुप से परिभाषित किया गया हैं।

जो संसार की वस्तुओं का यथार्थ दर्शन नहीं करवाती, वह एक मिथ्या भाषा हैं।

जो प्रत्येक जीव के लिए फायदेमंद नहीं हैं, कर्कश, कठोर, हिंसक, व्यंग्यात्मक या पापपूर्ण भाषा भले ही वह सच हो, फिर भी झूठ में गिनी जाती हैं।

श्रावक पूर्ण रुप से मिथ्या भाषा नहीं छोड़ सकते इसलिए वे स्थूल मिथ्या भाषा का त्याग करते हैं।

स्थूल मृषावाद विरमणं व्रत का विषयः-

- स्थूल मृषा अर्थात् बड़े झूठ का प्रयोग करना।
- किसी को बिना वजह सज़ा मिल जाए।
- लोक में बदनामी हो, कुल-जाति कलंकित हो।
- उसे राज्य द्वारा अपराधी मानकर दंडित किया जाए।
- जिस से किसी की व्यावहारिक या आर्थिक हानि होती हैं।

इस प्रकार के असत्य का उच्चारण स्थूल असत्य कहलाता हैं।

श्रावक के लिए पाँच प्रकार के स्थूल असत्य कहे गए हैं।

1. दूल्हा-दुल्हन के संबंध में, 2. पशु-पक्षी के संबंध में 3.जमीन-जायदाद के संबंध में 4. गिरवी रखी हुई वस्तुओं संबंध में 5. झूठी गवाही देना, जिससे किसी निर्दोष व्यक्ति को सजा मिले। इन पाँच प्रकार के स्थूल मृषावाद का श्रावक त्याग करते हैं।

आगारः-

इसके अलावा श्रावक सुक्ष्म मृषावाद का त्याग नहीं कर सकतें। कभी-कभी गलती से, आदत से, हँसी या डर से, जीव या संपत्ति की सुरक्षा हेतु, परिवार के सदस्यों की सुरक्षा आदि अपरिहार्य स्थितियों में असत्य का प्रयोग हो जाता हैं। यह सूक्ष्म मृषावाद हैं। श्रावक सूक्ष्म मिथ्याभाषा का आगार रखता हैं।

करण और कोटिः

श्रावक पहले व्रत की तरह दूसरा व्रत भी छह कोटि के साथ ग्रहण करते हैं।

अतिचारः- दूसरे व्रत के पाँच अतिचारों में से पहले तीन अतिचारों में शायद असत्य भाषण नहीं भी हो सकता हैं, हालांकि ऐसी भाषा दूसरों को चोट पहुंचाने वाली होती हैं, इसलिए इसे झूठ में शामिल किया गया हैं और इसे अतिचार के रुप में वर्णित किया गया हैं।

- किसी के साथ डरावना व्यवहार करना।
- दूसरों के रहस्य उजागर करना।
- खुद की स्त्री, (पुरुष) की गोपनियता जाहेर करना।
- झूठी सलाह या उपदेश देना।
- ग़लत लेख, दस्तावेज़ आदि लिखना।

श्रावक इन पाँच अतिचारों के यथार्थ स्वरुप को समझकर आवश्यकतानुसार हितकारी, प्रेमपूर्ण, मर्यादित भाषा का प्रयोग करते हैं।

अपेक्षित प्रश्न -

प्रश्न- 1. श्रावक के दूसरे व्रत का विषय क्या हैं?
प्रश्न- 2. किसी की गुप्त बातों को क्यों नहीं खोलनी चाहिए?
प्रश्न- 3. श्रावक को कैसी भाषा बोलनी चाहिए?
प्रश्न- 4. मृषावाद क्या हैं?
प्रश्न- 5. श्रावक दूसरे व्रत में क्या छूट रखता हैं?

तृतीय स्थूल अदत्तादान विरमण व्रतः-

- अदत्तादान - अदत्त - किसी के द्वारा न दी गई वस्तु, आदान - ग्रहण करना।
- किसी दूसरे की वस्तु को बिना दिए या बिना पूछे लेना अदत्तादान या चोरी हैं।

श्रावक पूरी तरह से अदत्तादान नहीं छोड़ सकते, इसलिए वे कुछ आगार- छूट के साथ स्थूल अदत्तादान का त्याग करते हैं।

स्थूल अदत्तादान विरमणं व्रत का विषय:-

• दिवाल में छेद गिराकर, किसी के घर में घुसकर उसका सामान ले जाना।

• किसी बक्से आदि में बंद करके रखे हुए कीमती सामान को खोलना, उसे ले लेना, जेब काटना।

• किसी का ताला दूसरी चाबी से खोलकर, सामान ले जाना।

• सड़क पर पड़ी हुई चीज उठा के मालिक का पक्का पता हो फिर भी उसे ले लेना।

ऐसी गतिविधियाँ, जो समाज में चोरी के नाम से प्रचलित हैं, श्रावक ऐसी चोरी करने का त्याग करते हैं।

आगार:-

श्रावक इस में कुछ छूट रखते हैं। उदाहरण के लिए - किसी भी रिश्तेदार या जिन लोगों के साथ उनका लेन-देन होता हैं, उनसे बिना पूछे चीजें लेनी पडे, व्यवसाय में साधारण चीजें लेना - ऐसी चीजें जो चोरी की हैं ऐसा प्रतीत नहीं होता हैं, जैसे कि - पेन और पेंसिल जैसी सामान्य चीजें लेना, श्रावक ऐसी छूट रखते हैं।

करण और कोटि:-

श्रावक तीसरा व्रत भी छह कोटि से ग्रहण करता हैं।

अतिचार:-

इस व्रत के पाँच अतिचार होते हैं।

• स्वयं चोरी करना।

• चोर बाजार के सामान का उपयोग करना। किसी भी प्रकार से चोर को सपोर्ट करना।

• राज्य के विरुद्ध गतिविधियाँ तस्करी आदि, किसी भी कानून का उल्लंघन करना।

• व्यापार में झूठे तराजू रखना।

• वस्तुओं में मिलावट करना, नमूने अलग दिखाना और सामान अलग देना

आदि सभी गतिविधियाँ चोरी हैं।

अत: श्रावक को अदत्तादान विरमणं व्रत का गहराई से विचार करके, अतिचार का आचरण न कर के, स्वीकृत व्रत के प्रति निष्ठावान रहना चाहिए।

अपेक्षित प्रश्न:-

प्रश्न- 1. अदत्तादान क्या हैं?

प्रश्न- 2. अदत्तादान विरमणं व्रत में श्रावक क्या पच्चक्खान करता हैं?

प्रश्न- 3. इस व्रत में श्रावक क्या छूट रखता हैं?

प्रश्न- 4. चोर बाज़ार की वस्तुओं का उपयोग करने से कौन सा अतिचार लगता हैं?

प्रश्न- 5. व्रत के प्रति वफ़ादारी क्या हैं?

चतुर्थ स्थूल मैथुन विरमणं व्रत:-

मैथुन - स्त्री-पुरुष का संबंध - अब्रह्मचर्य का सेवन करना,

ब्रह्मचर्य का अर्थ हैं ब्रह्म स्वरूप आत्मा में विचरण करना। पाँचों इंद्रियों के विषय भोग में तल्लीन होना, यह अब्रह्मचर्य हैं।

स्थूल मैथुन विरमणं व्रत का विषय:-

श्रावक पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन का लक्ष्य रखते हुए, वर्तमान में गृहस्थ जीवन की मर्यादा रूप स्वदार (स्वयं की पत्नी) एवम् श्राविकायें स्वभरथार (स्वयं के पति) संतुष्टि व्रत को स्वीकार करते हैं अर्थात् श्रावक परस्त्री से तथा श्राविकाएँ परपुरुष से संबंध, काया की कोटि से पूर्णतः त्याग देते हैं।

मैथुन सेवन देवता, मनुष्य और तिर्यंच इन तीन गतियों में हैं। अतः श्रावक इन तीनों गति के संबंध में मैथुन का त्याग करते हैं।

करण और कोटि -

देवता संबंधित दो करण x तीन योग : छह कोटि से और मानव-तिर्यंच संबंधित एक करण (करना नहीं) X एक योग (काया से) = एक कोटि से पच्चक्खान करता हैं।

जो श्रावक इस व्रत को स्वीकार करते हैं, वे स्वयं काया की कोटि से मैथुन सेवन का त्याग कर देते हैं, पर गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों के अनुसार पुत्र-पुत्रियों का विवाह करवाने होते हैं, इसलिए श्रावक मैथुन सेवन का न तो मन से और न ही वचन से करवाना या अनुमोदन देने का त्याग नहीं कर सकता।

अतिचार:-

श्रावक को गृहस्थ जीवन संयम भाव से चलाना चाहिए, लेकिन इस प्रकार के कर्मोदय से....

- भोग विलास में आसक्त होकर अपरिपक्व स्त्री के साथ संभोग करना।
- अविवाहित स्त्री के साथ संभोग करना।
- प्राकृतिक अंगों के अलावा अन्य अंगों से काम क्रिया करना।
- अपने बेटे-बेटी परिवार के अलावा किसी और की शादी कराना।
- कामभोग करने की प्रबल इच्छा रखना।

आदि गतिविधियाँ उनके असंयम भाव को प्रगट करती हैं।

श्रावक को इन अतिचारों पर चिंतन कर इनसे सर्वथा दूर रहकर ब्रह्मचर्य पालन का लक्ष्य रखना चाहिए।

अपेक्षित प्रश्न:-

प्रश्न- 1. चौथे व्रत में श्रावक क्या पच्चक्खान करते हैं?
प्रश्न- 2. ब्रह्मचर्य क्या हैं?
प्रश्न- 3. चौथे व्रत में श्रावक एक कोटि से पच्चक्खान क्यों करते हैं?
प्रश्न- 4. किसी और की शादी कराने में क्या दोष लगते हैं?
प्रश्न- 5. मैथुन सेवन की क्रिया किस किस गति में होती हैं?

पंचम स्थूल परिग्रह विरमणं व्रत:-

परिग्रह:-

1. ममत्वभाव से वस्तुओं का संग्रह करना ही परिग्रह हैं।
2. जो जीव को चारों ओर से बांधता हैं, वह परिग्रह हैं।
3. मूर्छा या आसक्तिभाव परिग्रह हैं।

परिग्रह दो प्रकार के होते हैं -
बाह्य परिग्रह और आभ्यंतर परिग्रह।

बाह्य परिग्रह:- इसके नौ प्रकार होते हैं।

1. खेत, बगीचे आदि खुली भूमि 2. भवन, दुकान, गोदाम आदि 3. चाँदी 4. सोना 5. धन-संपत्ति 6. अनाज 7. दास-दासी, नौकर-चाकर 8. पशु-पक्षी 9. घर की सारी चीज़ें।

आभ्यंतर परिग्रह:- इसके चौदह प्रकार हैं।

1. क्रोध 2. मान 3. माया 4. लालच (लोभ) 5. हास्य 6. रति (पसंद) 7. अरति (ना पसंद) 8. भय 9. शोक (दुःख) 10. जुगुप्सा (घृणा) 11. स्त्रीवेद 12. पुरुषवेद 13. नपुंसकवेद 14. मिथ्यात्व।

मोहनीय कर्म की उपरोक्त प्रकृतियाँ - चार कषाय, नौ नोकषाय और मिथ्यात्व, ये चौदह आभ्यंतर परिग्रह हैं।

स्थूल परिग्रह विरमणं व्रत का विषय -

गृहस्थ जीवन व्यवहार के कारण श्रावक परिग्रह को पूर्णतः नहीं छोड़ सकतें। वे इसे अपनी आवश्यकता के अनुसार सीमित करते हैं। श्रावक नौ प्रकार के बाह्य परिग्रह की मर्यादा करते हैं।

करण और कोटि -

श्रावक यह व्रत एक करण x तीन योग अर्थात् तीन कोटि के साथ ग्रहण करता हैं। श्रावक नौ प्रकार के बाह्य परिग्रह की मर्यादा करते हैं। श्रावक स्वयं परिग्रह को अपने लिए ही सीमित करते हैं, उसे परिवार के लिए करना या अनुमोदना करनी पड़ती हैं। इसलिए वह इसकी छूट रखते हैं।

अतिचारः- इस व्रत के पाँच अतिचार हैं।

- खेत, घर आदि की सीमा का उल्लंघन किया हो।
- सोना, चाँदी आदि की सीमा का उल्लंघन किया हो।
- धन-धान्य आदि की सीमा का उल्लंघन किया हो।
- पशु-पक्षी आदि की मर्यादा का उल्लंघन किया हो।
- घरेलू सामान की सीमा का उल्लंघन किया हो।

नौ प्रकार के बाह्य परिग्रहों की सीमाओं का उल्लंघन उनके लिए अतिचार बन जाते हैं। श्रावक को ममत्त्वभाव को त्यागने के लक्ष्य के साथ परिग्रह की सीमाएँ निर्धारित करनी चाहिए और उनका यथार्थ रूप से पालन करना चाहिए।

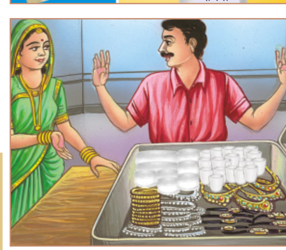

अपेक्षित प्रश्नः-

प्रश्न- 1. परिग्रह क्या हैं?

प्रश्न- 2. आभ्यंतर परिग्रह में कौन से कर्म की प्रकृतियाँ हैं?

प्रश्न- 3. पाँचवे व्रत को तीन कोटि से ग्रहण क्यों किया जाता हैं?

प्रश्न- 4. मोबाइल या लैपटॉप की गिनती किस परिग्रह में होती हैं?

प्रश्न- 5. परिग्रह की सीमा का लक्ष्य क्या होना चाहिए?

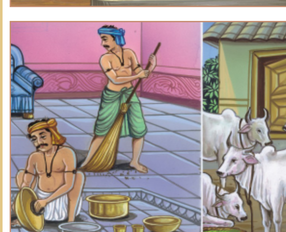

गुणव्रत

गुणव्रत उन्हें कहा जाता है, जो पाँच अणुव्रत के गुणों को बढ़ाता हैं या सभी प्राणियों की रक्षा के भाव प्रगटाने रुप गुणवृद्धि करें। एक दृष्टिकोण से प्रत्येक पाप प्रथम पाँच व्रतों में शामिल हैं, फिर भी शास्त्रकारों ने अहिंसा आदि व्रतों की पुष्टि के लिए तीन गुणव्रतों का कथन किया हैं।

छट्ठा दिशा परिमाण, सातवां उपभोग - परिभोग परिमाण और आठवां अनर्थदंड विरमणं व्रत ये तीन गुणव्रत हैं।

छट्ठा दिशा परिमाण विरमणं व्रत

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, उर्ध्व और अधो इन छह दिशाओं में जाने की सीमा का निर्धारण। दिशाओं को सीमित करने से आत्मा उसके बाहर होने वाली हर पापपूर्ण गतिविधि से बच जाता हैं, उसके कारण होने वाले कर्मबंध से अटक जाता हैं। सीमाएँ निर्धारित करने से उसके बाहर के क्षेत्र में जाने की इच्छा भी छूट जाती हैं। जिससे वृत्तिसंक्षेप तप का लाभ मिलता हैं।

दिशा परिमाण विरमणं व्रत का विषय:-

छह दिशाओं की सीमा (कि.मी.) का निर्धारण करना।

करण और कोटि - यह व्रत दो करण x तीन योग = छह कोटि से ग्रहण होता हैं।

अतिचार:- इसके पाँच अतिचार होते हैं।

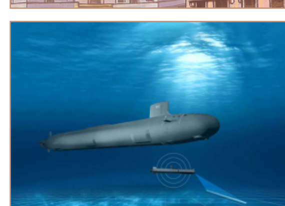

- उर्ध्व दिशा की सीमा का उल्लंघन करना।
- अधो दिशा की सीमा का उल्लंघन करना।
- चारों दिशाओं की सीमा का उल्लंघन करना।
- पूर्व दिशा की सीमा के बाहर के क्षेत्र में जाना है तो पश्चिमी दिशा की सीमा कम कर वहाँ चले जाना।
- शंका होने पर भी सीमा का उल्लंघन करना।

यह श्रावक के लिए अतिचार रूप हैं।

श्रावक को व्रत के महत्व को समझना चाहिए, उसे स्वीकार करना चाहिए और सच्चे मन से लिए गए व्रत का पालन करना चाहिए।

अपेक्षित प्रश्न -

प्रश्न- 1. दिशा परिमाण व्रत क्या हैं?

प्रश्न- 2. दिशा सीमित करने से क्या लाभ मिलता हैं?

प्रश्न- 3. छट्ठे व्रत के पालन से वृत्तिसंक्षेप तप कैसे होता हैं?

प्रश्न- 4. दिशा की सीमा को भूल जाना कौन सा अतिचार हैं?

प्रश्न- 5. गुणव्रत किसे कहते हैं?

सप्तम उवभोग-परिभोग परिमाण विरमणं व्रत:-

जीवन व्यवहार की प्रत्येक वस्तु की मर्यादा निर्धारित करना, वह उवभोग-परिभोग विरमणं व्रत हैं।

उवभोग - जिन वस्तुओं का सेवन केवल एक बार किया जाता हैं, अन्न-जल आदि 'उवभोग' कहलाते हैं।

परिभोग – बार-बार उपयोग में आने वाली वस्तुएँ, जैसे कपड़े, आभूषण आदि 'परिभोग' कहलाती हैं।

उवभोग-परिभोग परिमाण विरमणं व्रत विषय:-

इस व्रत में 26 बोलों की मर्यादा का कथन हैं, जिसमें पहले दस बोल स्नान, वस्त्र, श्रृंगार आदि शरीर से संबंधित हैं। इसके बाद ग्यारह बोल भोजन और जल से संबंधित हैं। अंतिम पाँच बोल वाहन, जूते, बिस्तर, सचेत वस्तुओं और अन्य पदार्थों की मर्यादा से संबंधित हैं।

करण और कोटि -

यह व्रत भी परिग्रह की मर्यादा के अनुसार स्वयं के लिए किया जाता हैं, इसलिए एक करण X तीन योग = 3 कोटि से ग्रहण होता हैं।

अतिचार: - इस व्रत में भोजन संबंधित पाँच अतिचारों और कर्मादान (महा आरंभजन्य विभिन्न व्यवसाय - जिसमें अनंत जीवों की हिंसा होती हैं) से संबंधित

पंद्रह अतिचारों का उल्लेख हैं।

भोजन से संबंधित पाँच अतिचार:- श्रावक सदैव अल्पहिंसक एवं सात्विक भोजन संयमपूर्वक करता हैं। हर चीज़ का उपभोग करने से पहले ही उसमें शामिल हिंसा के बारे में सोचता हैं। यदि श्रावक इस प्रकार की मर्यादा भूल जाता हैं तो अतिचारों का सेवन हो जाता हैं। इसलिए उसे लगातार सतर्क रहना चाहिए।

• श्रावक को प्राय: सचेत चीजों का त्याग रहता हैं या उसकी मर्यादा होती हैं। सो यदि उसका उल्लंघन हुआ हो, जैसे की – कच्ची ककडी...

• सचेत वस्तु के साथ रही हुई अचेत वस्तु का उपयोग किया हो, जैसे की – बीज के साथ रहा हुआ खजुर...

• कच्ची-पक्की (सचेत+अचेत = मिश्र) वस्तु का उपयोग किया हो। जैसे की – तुरंत की बनाई हुई कच्ची पक्की सब्जि...

• दुष्पकव - अहिंसा के भावों के बिना पकी हुई वस्तुओं का उपयोग किया हो। जैसे की – बैंगन का भर्ता...

• तुच्छ वस्तु - ऐसी वस्तुओं का सेवन करना, जिसमें खाना कम और फेंकना अधिक होता हैं। जैसे की – सीताफल, बोर, गन्ना आदि...

ऐसी सब गतिविधियाँ श्रावक के लिए अतिचार रूप हैं।

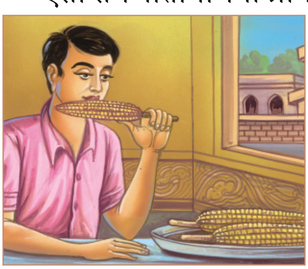

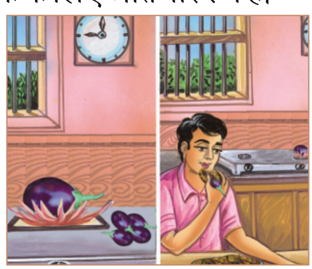

कर्मादान:-

श्रावक को अपने गृहस्थ जीवन को चलाने के लिए अल्प हिंसक व्यवसाय करना चाहिए, परंतु यदि वह मर्यादा भूलकर अनंत जीवों की हिंसा करने वाला व्यवसाय करता हैं तो यह उसके लिए अतिचार रूप हैं। जैसे की - छह काय जीवों का महारंभ होता हो, बिजली की मशीनों द्वारा संचालित बड़े कारखाने चलाना, जंगल के पेड़ काटना, कुओं, तालाबों, झीलों आदि से बडी मात्रा में पानी निकालना, जिसमें

जलचरों, मछलियों तथा अन्य जलीय जीवों की हिंसा हो जाती हैं। दुराचारी मनुष्यों का अपने स्वार्थ के लिए पालन पोषण करना आदि गतिविधियाँ श्रावक के लिए त्याग करने योग्य हैं।

संक्षेप में, श्रावक को कर्म के सिद्धांत को स्वीकार कर जिस प्रवृत्तियों के माध्यम से कम से कम पाप हो इस तरह अपना जीवन निर्वाह करना चाहिए और संतुष्टि की भावना विकसित करनी चाहिए। उसे अपना जीवन जागृति पूर्वक जीना चाहिए ताकि उसे धन-संपत्ति के लिए अनंत कर्म बंध न हो और अनंत जीवों की हिंसा न हो।

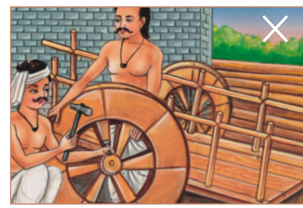

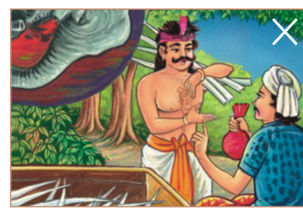

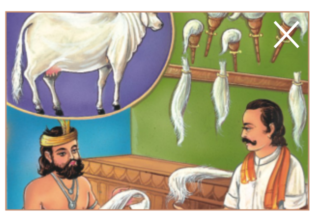
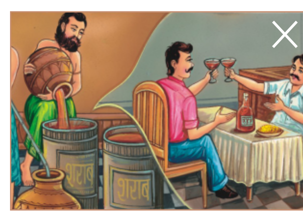
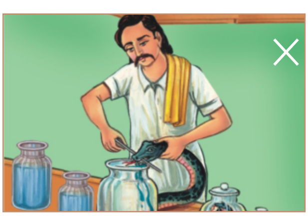
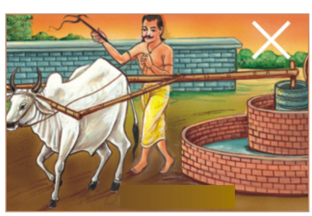
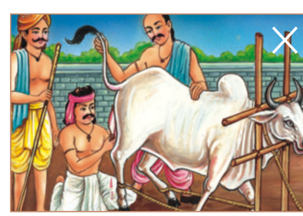
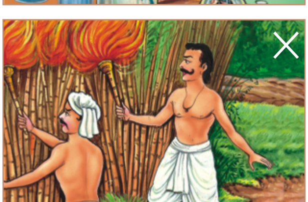
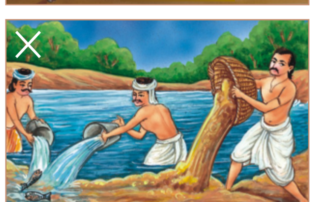

अपेक्षित प्रश्न:-

प्रश्न- 1. उपभोग-परिभोग क्या हैं?

प्रश्न- 2. कर्मादान किसे कहते हैं?

प्रश्न- 3. भोजन संबंधी अतिचार कितने हैं?

प्रश्न- 4. श्रावकों का भोजन कैसा होना चाहिए?

प्रश्न- 5. श्रावकों का व्यवसाय कैसा होना चाहिए?

आठवां अनर्थदंड विरमणं व्रत:-

अनर्थदंड:- बिना प्रयोजन की गई पाप प्रवृत्ति को 'अनर्थदंड' कहते हैं।

जैसे कि, दूसरा रास्ता होने पर भी घास पर चलना।

श्रावक जानते हुए भी कुछ पाप कर्म नहीं छोड़ सकते, उदाहरण के लिए, खाना पकाने से छह काय जीवों का आरंभ होता हैं, यह जानते हुए भी खाना पकाना अनिवार्य हैं, इसलिए उस कार्य को अर्थदंड कहा जाता हैं। लेकिन उसी भोजन में राग-द्वेष करना या खाना बनाते समय जतना न रखना, यह क्रिया अनर्थदंड हैं।

अनर्थदंड विरामणं व्रत का विषय

अनर्थदंड चार प्रकार के होते हैं -

1. अपध्यान- आर्तध्यान या रौद्रध्यान करना।

आर्तध्यान- मन को आर्त = दुख या पीड़ा पर केंद्रित करना आर्तध्यान हैं। जैसे कोई प्रिय वस्तु या व्यक्ति दूर चला जाए तो उसके लिए दुखी होना। यदि कोई अप्रिय वस्तु या व्यक्ति का सामना हो जाए तो उससे छुटकारा पाने के लिए दुखी होना। शारीरिक रोग से दुखी होना। भौतिक वस्तुओं को प्राप्त करने की तीव्र लालसा... आदि क्रियाएँ आर्तध्यान हैं।

रौद्रध्यान:- पाप कर्मों को अत्यधिक उग्रता से करना, उन में एकाग्र होना रौद्रध्यान हैं। अपनी इच्छा या स्वार्थ की पूर्ति के लिए हिंसा, झूठ बोलना, चोरी करना आदि कोई भी पाप प्रवृत्तियाँ खुशी खुशी करना रौद्रध्यान हैं।

2. प्रमादाचरण:- आत्मभाव को भूलकर भौतिक जगत में लीन हो जाना ही प्रमाद हैं अथवा धार्मिक कार्यों में आलस्य और पाप कार्यों में परिश्रम प्रमाद हैं। इसके

पाँच प्रकार हैं - अभिमान, विषय (पाँच इन्द्रियों के विषय), कषाय, निंदा और विकथा इन प्रमादों का आचरण प्रमादाचरण हैं।

3. हिंस्त्रप्रदान:- दूसरों को हिंसक साधन, हथियार देना। यदि श्रावक इसे अपने उपयोग या सुरक्षा के लिए उपयोग करता हैं तो अर्थदंड हैं, लेकिन वही उपकरण दूसरों को देना अनर्थदंड हैं।

4. पापकर्मोपदेश:- पाप कर्मों का उपदेश देना।

श्रावक को इस चारों तरह के अनर्थदंड का त्याग होता हैं।

करण और कोटि -

यह व्रत दो करण x तीन योग = छह कोटि द्वारा ग्रहण किया जाता हैं।

अतिचार:-

इस व्रत के पाँच अतिचार हैं।

जब श्रावक अपने संयमपूर्वक के व्यवहार की सीमा का उल्लंघन करता हैं, तब अर्नथदंड का सेवन हो जाता हैं। जैसे कि....

- ऐसी भाषा का प्रयोग करना जिससे दूसरों की कामवासना जागृत हो।
- आँख, मुँह, हाथ आदि से कुचेष्टा करना।
- व्यर्थ बातें करना, हँसी-मजाक करना
- विभिन्न प्रकार के हिंसक उपकरणों को स्वयं के लिए रखना, पुराने उपकरणों की मरम्मत करवाना।
- भौतिक वस्तुओं से अत्याधिक लगाव रखना।

क्योंकि ये प्रवृत्तियाँ बिन जरूरी हैं इसलिए श्रावक को इसका आचरण करना योग्य नहीं।

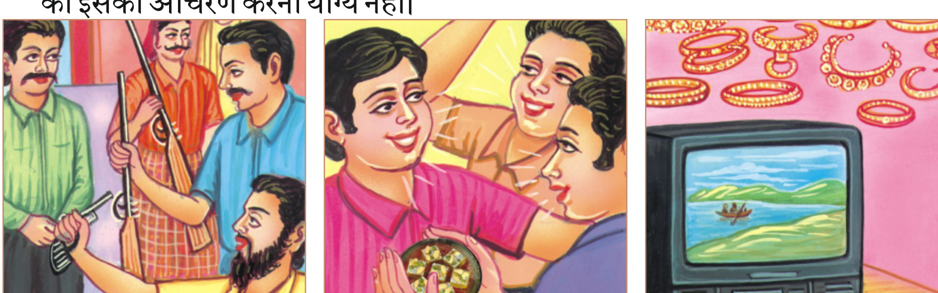

संक्षेप में, श्रावक को अपने जीवन की आवश्यक गतिविधियों के अलावा अनावश्यक गतिविधियाँ, उसका चिंतन या भाषण में संलग्न नहीं होना चाहिए। श्रावक पापभिरु होते हैं इसलिए वे सदैव अनर्थदंड से बचने का प्रयास करते हैं।

अनर्थदंड से दूर रहने के लिए श्रावकों को निम्नोक्त सावधानी रखनी चाहिए...

1. अशुभ चिंतन को विवेक पूर्वक रोक देना और समभाव, शांति, संतोष के विचारों से आत्मा को संस्कारित एवं जागृत रखना।
2. सांसारिक कर्तव्यों, व्यवहारों, व्यापार की एवं घर की प्रवृत्तियों में पूर्ण विवेकयुक्त आचरण का लक्ष्य एवं अभ्यास रखना, निरर्थक अथवा अनावश्यक प्रवृत्तियों से एवं सिर्फ मनोरंजन अथवा लोकप्रवाह से वश होकर करने में आती प्रवृत्तियों से भी वैराग्य एवं विवेक पूर्वक दूर रहने का प्रयत्न करना।
3. शस्त्र संग्रह-शस्त्र वितरण, शस्त्र प्रयोग की प्रेरणा या दलाली ना करना।
4. स्वयं के आवश्यक संबंध या जवाबदारी जहाँ हो उसके अतिरिक्त अन्य किसी के संसारी कार्य, व्यापार अथवा अन्य व्यवहारों में रस न लेना।
5. आरंभ, समारंभ से बने हुए विशिष्ट – दर्शनिय स्थानों की बहुत प्रशंसा न करना, किसी वस्तु की प्रशंसा करने में भाव एवं भाषा का विवेक रखना।
6. कर्म के सिद्धांत पर दृढतम श्रद्धा रख कर, वर्तमान परिस्थिति का समभाव पूर्वक स्वीकार करना।

अपेक्षित प्रश्न -

प्रश्न- 1. अनर्थदंड क्या हैं?

प्रश्न- 2. अनर्थदंड में कितने और कौन से ध्यान समाविष्ट हैं?

प्रश्न- 3. हँसी-मजाक करने से कौन सा अतिचार लगता हैं?

प्रश्न- 4. प्रमाद कितने प्रकार के होते हैं और कौन से?

प्रश्न- 5. श्रावक में कौन सा गुण होना जरुरी हैं?

जो जो रात्रियाँ एवं दिन व्यतीत हो जाते हैं, वे वापिस नहीं आते। अधर्म करनेवालों के वे दिन निष्फल हो जाते हैं।

जीव की विकास यात्रा

सामान्यतःजीव दो प्रकार के होते हैं, संसारी और सिद्ध।

1. जो जीव जन्म और मृत्यु के चक्र में घूमता हैं,
2. जिस जीव के साथ कर्म हैं,
3. जो जीव आधि-व्याधि, उपाधि से पीड़ित हैं,
4. जिस जीव की परिस्थितियों में परिवर्तन होता रहता हैं, वे सांसारिक जीव हैं।

और

1. जिस जीव की जन्म और मृत्यु नहीं होती हैं,
2. वह जीव जो कर्मो से मुक्त हैं,
3. जिस जीव को किसी भी प्रकार का कोई दुःख नहीं, जिसके जीवन में अनंत-अनंत सुख होता हैं,
4. जो जीव सदैव एक ही अवस्था में रहते हैं वे सिद्ध जीव हैं।

हम सांसारिक जीवों को तो देखते हैं परंतु सिद्ध जीवों को नहीं देख पाते, इसलिए प्रश्न उठता हैं कि ऐसी अनंत आनंदमय स्थिति किसे, कब और कैसे प्रकट होती हैं?

इन सभी प्रश्नों के समाधान के लिए हमें जीव की विकास यात्रा पर दृष्टि डालनी होगी। जीव के पुरुषार्थ से ही जीव की विकासयात्रा होती हैं। जीव जितना और जैसा पुरुषार्थ करता हैं, उस प्रकार उसका विकास होता हैं।

इस संसार के अनंत जीव ऐसे ही हैं, जो जीव तथा प्रकार के स्वभाव से ही आत्मशुद्धि का कोई पुरुषार्थ ही नहीं कर पाते। चूँकि उन जीवों में योग्यता नहीं होती इसलिए उनका विकास नहीं होता। वे जीव संसार में अनंत-अनंत काल तक जन्म-मरण का कष्ट भुगतते हैं, उसका कभी अंत नहीं होता। मोक्ष में जाने की अयोग्यता वाले इस प्रकार के जीव **अभवी जीव** कहलाते हैं।

लेकिन ऐसे अनंत-अनंत जीव भी हैं, जो तथा प्रकार के स्वभाव से ही पुरुषार्थ के माध्यम से अपना आत्मविकास कर सकते हैं। वे जीव अत्यंत निम्न स्तर से ऊपर उठकर क्रमश: प्रगति करते हुए, मनुष्य जन्म प्राप्त कर सभी कर्मो को नष्ट कर कर्मो से मुक्त होकर सिद्ध पद को प्राप्त कर सकते हैं। वे जीव अपने दुखों का अंत कर सकते हैं।

इस प्रकार के जीव, जो मोक्ष में जाने के योग्य हैं, उन्हें **भवी जीव** कहा जाता हैं।

इस प्रकार मोक्ष में जाने के लिए जीवों की योग्यता या अयोग्यता अर्थात् भवी या अभवी - जीवों का स्वाभाविक – पारिणामिक (नैचरल) स्वभाव हैं। इस में कभी कोई बदलाव नहीं होता। भवी जीव कभी अभवी नहीं बनते और अभवी जीव कभी भवी नहीं बनते।

जीव के जो भाव कर्मजन्य हैं, उन में पुरुषार्थ से परिवर्तन होता हैं, लेकिन सहज होने वाले पारिणामिक भावों में कोई बदलाव नहीं आता। संक्षेप में केवल भवी जीव ही अपना विकास कर सकते हैं।

भवी जीव अपनी सांसारिक अवस्था से आगे बढ़ते हुए अंततः सिद्ध दशा को प्राप्त करते हैं, तब उसमें मुख्य दस माईलस्टोन आते हैं। **प्रत्येक माईलस्टोन उसके क्रमिक विकास को दर्शाते हैं। वे इस तरह हैं।**

1. अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में आना।
2. कृष्णपक्षी से शुक्लपक्षी बनना।
3. मिथ्यात्वी से समकिति बनना।
4. अपरित्तसंसारी से परित्तसंसारी बनना।
5. दुर्लभबोधि से सुलभबोधि बनना।
6. विराधक से आराधक बनना।
7. अचरमशरीरी से चरमशरीरी बनना।
8. छद्मस्थ अवस्था को त्याग कर केवली बनना।
9. सयोगी से अयोगी बनना।
10. संसार को छोड़कर सिद्धक्षेत्र में स्थिर हो जाना।

01 व्यवहार राशि में प्रवेश

अव्यवहार राशि

इस संसार में अनंता अनंत जीव हैं, जिनका जन्म और मृत्यु अनादि काल से निगोद-साधारण वनस्पतिकाय में होता आया हैं। वे जीव जिनका जन्म और मृत्यु किसी अन्य गति या जाति में नहीं हुआ हैं, वह **अव्यवहार राशि के जीव** कहलाते हैं। यह जीव की सबसे अविकसित अवस्था हैं। प्रत्येक जीव ने अव्यवहार राशि में अनंत जन्म

और मृत्यु कर, अनंत काल बिताया हैं।

जब कोई एक जीव मनुष्य क्षेत्र से सिद्ध हो जाता हैं तब एक जीव अव्यवहार राशि से निकलकर व्यवहार राशि में प्रवेश करता हैं अर्थात् उसकी विकास यात्रा का प्रारंभ हो जाता हैं।

अव्यवहार राशि से बहार निकलने वाला जीव फिर चार गति में, एकेंद्रीय से पंचेन्द्रीय तक की जाति में जन्म और मृत्यु रुप व्यवहार शुरू करता हैं। चारों गतियों में परिभ्रमण करने वाले जीव **व्यवहार राशि के जीव** कहलाते हैं।

02 शुक्लपक्षी

व्यवहार राशि के जीव कर्म के अनुसार 4 गति, 24 दंडक एवं 84 लाख जीवायोनि में जन्म-मरण करते हैं। यह चक्र अनादि काल से चला आ रहा हैं। इस अवस्था में उन जीवों में सद्गुणों का प्रकाश नहीं होता। उनके जन्म और मृत्यु के परिभ्रमण का कोई अंत नहीं हैं। संसार परिसंचरण की ऐसी अंधकारमय स्थिति वाले जीवों को **'कृष्णपक्षी'** कहा जाता हैं।

अंतहीन जन्म और मृत्यु के कष्टों को झेलते हुए, अकाम निर्जरा करते करते कुछ भवी जीवों का संसार परिभ्रमण अर्ध पुद्गल परावर्तन काल शेष रहता हैं, तब उन जीवों को **'शुक्लपक्षी'** कहा जाता हैं। शुक्लपक्षी जीव अवश्य अर्ध पुद्गल परावर्तन काल में मोक्ष जाते हैं।

कृष्णपक्षी या शुक्लपक्षी होना काल सापेक्ष भाव हैं। जो जीव एक बार शुक्लपक्षी बन गया, वह दोबारा कृष्णपक्षी नहीं बनता।

शुक्लपक्षी जीवों में कुछ सद्गुणों का प्रकाश होता हैं। उन जीवों की गाढ अंधकारमय स्थिति दूर हो जाती हैं।

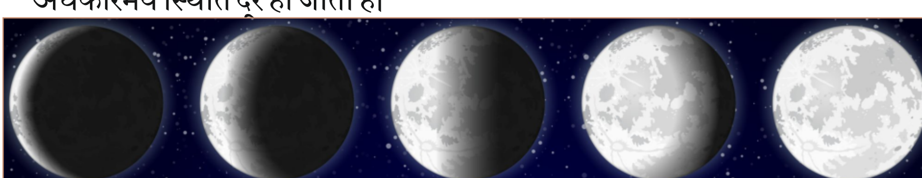

पुद्गल परावर्तन काल की सारांश में समझ

यह जैन धर्म का पारिभाषिक शब्द हैं। यह अनंत काल का सूचक हैं। जीव लोक के सभी पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण कर लेता हैं और अपने शरीर, वचन, श्वासोश्वास या

कर्म के रूप में परिणमीत कर छोड़ देता हैं। इस में व्यतीत किये गए समय को एक पुद्गल परावर्तन कहा जाता हैं। परमाणु पुद्गल वर्गणा की विविधता के अनुसार पुद्गल परावर्तन के सात प्रकार हैं। प्रत्येक पुद्गल परावर्तन में अनंत कालचक्र पसार होते हैं। प्रत्येक जीव ने अतीत में ऐसे अनंत अनंत पुद्गल परावर्तन काल जन्म-मरण में व्यतीत किए हैं और जब तक मोक्ष प्राप्ति न हो तब तक यह परिभ्रमण जारी रहता हैं।

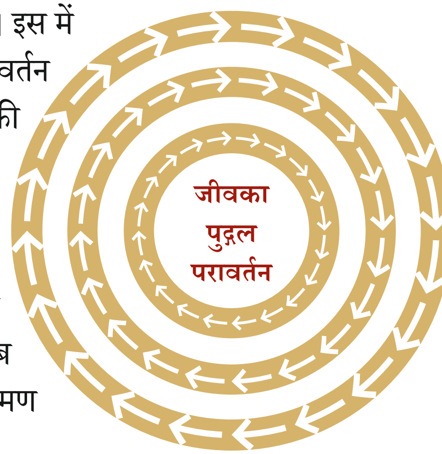

एक पुद्गल परावर्तन काल से आधे काल को अर्ध पुद्गल परावर्तन काल कहते हैं। जिस में भी अनंत काल पसार होता हैं।

03 सम्यग् दर्शन

कृष्णपक्षी जीव मिथ्यात्वी ही होते हैं, उन जीवों को मिथ्यात्व के उदय से सुदेव, सुगुरु, सुधर्म या नौ तत्वों में कोई विश्वास नहीं होता। मिथ्यात्व का उदय जीव को मूढ़ बनाता हैं, जीव को भ्रमित करता हैं। वे मूढ़ जीव सत्य-असत्य अथवा सार-असार का निर्णय नहीं कर सकतें। परिणाम स्वरूप वे जीव अनंत संसार में परिभ्रमण करते हैं।

शुक्लपक्षी जीवों में से कुछ जीव सत् निमित्त प्राप्त करके या कुछ जीव स्वयं ही सत्य का अनुभव करते हैं। उन जीवों के मिथ्यात्व मोहनीय कर्म नष्ट हो जाते हैं, उसके बाद उन्हें सुदेव, सुगुरु, सुधर्म और नौ तत्वों में आस्था होती हैं। संसार में शरीर आदि रहे हुए जो जड़-चेतन पदार्थ हैं, उन्हें वैसे ही यथार्थ रुप से जानते हैं अर्थात् उन्हें **सम्यग् दर्शन** प्रगट होता हैं। वे जड़ और चेतन के बीच अंतर करके स्वयं के आत्म स्वरूप को यथार्थ समझते हैं। मैं शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा हूँ। सभी भौतिक वस्तुएँ मुझसे भिन्न हैं, वह ऐसा महसूस करते हैं।

सम्यग् दर्शन की प्राप्ति आत्म विकास का प्रथम सोपान हैं। सम्यग् दर्शन प्रकट

होने पर ही जीव का आत्मविकास प्रारंभ होता हैं।

सम्यग् दर्शन या मिथ्यात्व ये दोनों अवस्थाएँ कर्म जन्य हैं। इसलिए इस में जीव का पुरुषार्थ से परिवर्तन संभव हैं। एक समकिति जीव फिर से मिथ्यात्वी बन सकता हैं और एक मिथ्यात्वी जीव फिर से समकिति बन सकता हैं।

04 परित्तसंसारी

जिन जीवों का संसार परिभ्रमण काल परिमित या सीमित हो गया हैं, उन्हें अब संख्यात या असंख्यात काल तक ही संसार में रहना हैं, उन्हें **'परित्तसंसारी'** कहते हैं। जिन जीवों को अनंत काल तक भ्रमण करना हैं उन्हें **'अपरित्तसंसारी'** कहा जाता हैं।

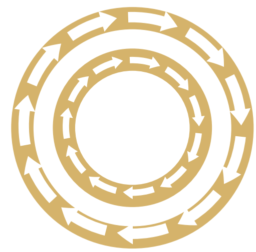

परित्तसंसारी

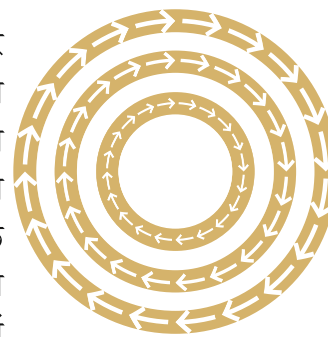

अपरित्तसंसारी

सम्यग् दर्शनी जीवों में भी परित्तसंसारी और अपरित्तसंसारी दोनों प्रकार के जीव होते हैं। जो जीव गिनती के भवों के भीतर मोक्ष में जाते हैं, वे परित्तसंसारी सम्यक् दर्शनी होते हैं और कुछ समकिति जीव पतित हो कर निगोद में अनंत काल व्यतीत करते हैं, उसके बाद वे फिर से समकित पाकर मोक्ष में जाते हैं, वे जीव अपरित्त संसारी हैं। वे जीव अर्ध पुद्गल परावर्तन काल में मोक्ष में जाते हैं।

परित्तसंसारी होना काल सापेक्ष हैं। परित्तसंसारी बनने के बाद जीव कभी भी अपरित्तसंसारी नहीं बनता।

05 सुलभ बोधि

परित्तसंसारी अथवा अपरित्तसंसारी, दोनों प्रकार के जीव सुलभबोधि एवं दुर्लभबोधि होते हैं।

जिन जीवों को सत्य का स्वाद, सत्य की प्राप्ति या जिनधर्म की प्राप्ति आसानी से होती हैं, वे **'सुलभबोधि'** कहलाते हैं और जिन्हें सत्य का स्वाद, सत्य की प्राप्ति या जिनधर्म की प्राप्ति

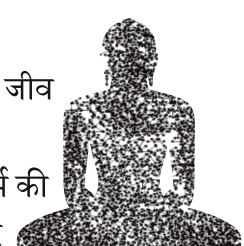

दुर्लभबोधि

कठिनाई से होती हैं, वे **'दुर्लभबोधि'** कहलाते हैं।

परित्तसंसारी बन चुका जीव आत्म विकास की यात्रा में आगे बढ़ता हुआ, उस लक्ष्य से पुरुषार्थ करता हुआ सुलभबोधि बन जाता हैं। सुलभबोधि पाना भाव सापेक्ष हैं।

सुलभबोधि

06 आराधक

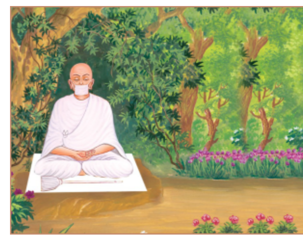

जो तीर्थंकर की आज्ञा के अनुसार श्रद्धा पूर्वक श्रावकधर्म या साधुधर्म का यथार्थ पालन करता हैं, वह 'आराधक' कहलाता हैं और जो तथा प्रकार के कर्मउदय के कारण आज्ञा का उल्लंघन करता हैं, वह 'विराधक' कहलाता हैं। आराधकता भी जीवों के सापेक्ष भाव हैं। ऐसे भाव कई बार आते हैं। आराधक जीव आत्म विकास की यात्रा में आगे बढ़ सकते हैं।

07 चरम

जिस जीव का वर्तमान भव अंतिम हैं, उसे अब कोई अन्य भव या शरीर धारण नहीं करना हैं, उसे 'चरम' कहा जाता हैं और जिस जीव को एक से अधिक भव या शरीर धारण करना होता हैं, उसे 'अचरम' कहा जाता हैं।

चरम जीव ही मोक्ष में जाते हैं।

साधक क्षपक श्रेणी का प्रारंभ करता हैं। साधना के मार्ग में पुरुषार्थ करते हुए, मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय करके वह जीव तद्भव मोक्षगामी - उसी भव में मोक्ष में जाने की पात्रता प्राप्त कर लेता हैं अर्थात् वह जीव चरम हो जाता हैं।

08 केवली

क्षपकक्षेणी के पुरुषार्थ से मोहनीय कर्म क्षय हो जाता हैं और जीव वीतरागी बन जाता हैं, जिसके बाद एक अंतः मुहूर्त में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय ये तीनों कर्म का एक साथ क्षय करता हैं। इस प्रकार चार घाती कर्मों के क्षय से जीव छद्मस्थ अवस्था को छोड़कर केवली अवस्था को प्राप्त हो जाता हैं।

छद्म = आवरण, स्थ = स्थित। घातीकर्मों के आवरण में स्थित वाले जीवों को

'छद्मस्थ' कहा जाता हैं। वह आवरण हट जाने पर जीव केवली हो जाता हैं।

09 अयोगी

केवली भगवान चार अघाती कर्मों को भुगत रहे हैं। जब तक आयुष्य कर्म का उदय होता हैं तब तक वे जीव जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट एक करोड पूर्व में कुछ न्युन वर्ष तक केवली अवस्था में विचरण करते हैं, तब तक उनकी मन, वचन, काया की प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं, सो उन्हें सयोगी केवली कहते हैं। जब अंतर्मुहूर्त का आयुष्य शेष रहता हैं, तब केवली भगवान अपने मन-वचन-काय के योगों का निरोध कर अर्थात् तीनों योगों की क्रिया को पूर्णत: बंद कर वे सयोगी से अयोगी हो जाते हैं।

अनादि काल से जन्म-मरण करने वाला जीव सयोगी ही होता हैं। उसके आत्म प्रदेशों में सतत कंपन चलता रहता हैं। जब वे अयोगी हो जाते हैं, तब आत्म प्रदेश निष्कंप हो जाते हैं। उसके बाद कोई नये कर्मों का बंध नहीं होता।

अयोगी अवस्था में जीव बहुत ही अल्पकाल रहेता हैं। वह काल अ, ई, उ, ऋ, लृ ये पंच ह्रस्व अक्षर उच्चारण काल रूप होता हैं। इस काल के दौरान शेष रहे हुए चार अघाती कर्म - वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र को नष्ट कर देता हैं।

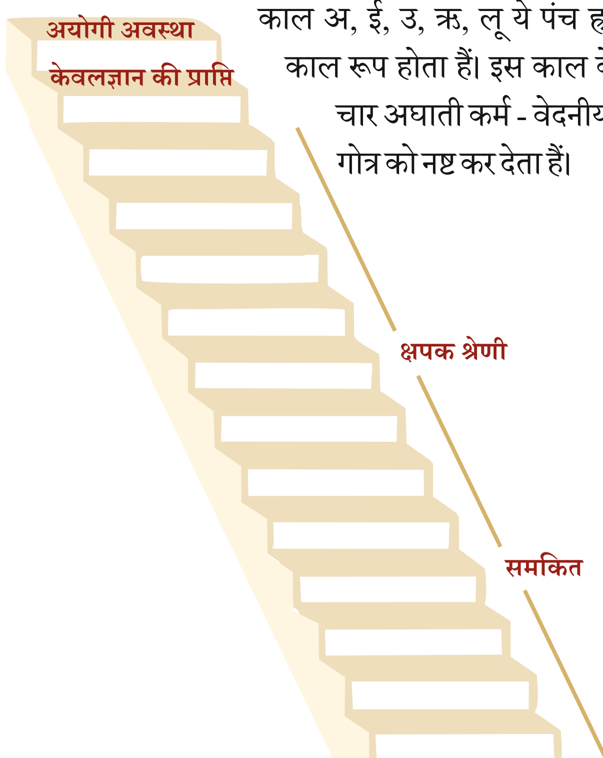

10 सिद्धक्षेत्र में स्थिति

शुद्ध, बुद्ध और मुक्त आत्मा, आठ कर्मों और शरीर से पूरी तरह मुक्त होकर, वह स्वयं की अनंत शक्ति के साथ उर्ध्वगमन करती हैं।

एक ही समय में सीधी-सरल गति से मनुष्य क्षेत्र के ठीक ऊपर सिद्ध क्षेत्र में पहुँच जाती हैं और अनंत काल तक वहीं स्थिर हो जाती हैं।

शुद्ध चैतन्य स्वरूपी आत्मा अनंत काल तक अपनी स्थिति में कोई परिवर्तन किए बिना, अखंड आत्मभाव में स्थिर रहती हैं। उस पवित्र आत्मा के पास अब दुख का कोई कारण नहीं हैं। उन जीवों का न जन्म होता हैं, न बुढ़ापा, न मृत्यु, न रोग, न शोक, न शारीरिक या संयोग जन्य कोई दुख। वे अनंत आत्मिक सुख में विराजीत रहते हैं।

यह है जीव की निगोद से मोक्ष तक की विकासयात्रा हैं...

अपेक्षित प्रश्न -

1. कौन से जीव आत्मविकास कर सकते हैं?
2. अव्यवहार राशि किसे कहा जाता हैं? आपकी आत्मा किस राशि में हैं?
3. जीव शुक्लपक्षी कब बनता हैं?
4. मिथ्यात्व क्या करता हैं?
5. सम्यग् दर्शन क्या हैं?
6. परित्तसंसारी जीव पुन: अपरित्तसंसारी बनता हैं या नहीं और क्यों?
7. आराधक किसे कहा जाता हैं?
8. अघाती कर्मों का नाश किस कर्म से होता हैं?
9. जीव कितने समय में और किस गति से सिद्धक्षेत्र में पहुँचता हैं?
10. सिद्ध अवस्था की स्थिति कितनी हैं?
11. सम्यक् दर्शन प्राप्त होने के बाद जीव का मोक्ष कब होता हैं?

चौदह राजलोक

मनुष्य के मन में जीव, जगत और जगत्पति अर्थात् ईश्वर के विषय में सदैव जिज्ञासा बनी रहती हैं।

जीव क्या हैं? जीव कैसा हैं? जीव को किसने बनाया?

इसी प्रकार यह संसार क्या हैं? संसार को किसने बनाया हैं? कब बनाया? यह दुनिया कब तक चलेगी? आदि सभी विषयों में जिज्ञासुओं के मन में अनेक प्रश्नों की श्रृंखला चलती रहती हैं।

प्रस्तुत विषय में हम विश्व-लोक प्रश्नों के समाधान के लिए इस संसार के स्वरूप को जानते हैं...

जैन दर्शन के अनुसार यह संसार अनादि काल से अस्तित्व में हैं और अनंत काल तक रहेगा। न लोक की उत्पत्ति हैं और न ही विनाश हैं। किसी भगवान ने लोक को नहीं बनाया। और ऐसा भी नहीं है कि लोक का निर्माण किसी अन्य तत्व के माध्यम से हुआ हो। यह लोक स्वाभाविक रूप से था, हैं और रहेगा।

लोक में - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल, यह 6 द्रव्य (पदार्थ) होते हैं। इन 6 के अतिरिक्त इस लोक में अन्य कोई भी द्रव्य नहीं हैं।

6 द्रव्य में से आकाश द्रव्य अनंत अनंत क्षेत्र में व्यापक हैं। अनंत आकाश द्रव्य के जितने क्षेत्र में छः द्रव्य हैं, उस क्षेत्र को **'लोक'** कहते हैं और लोक के बाहर के क्षेत्र में जहाँ केवल आकाश द्रव्य हैं, उस क्षेत्र को **'अलोक'** कहते हैं।

लोक लंबाई में चौदह रज्जु जितना हैं इसलिए उसे चौदह राजलोक कहते हैं। लोक की चौड़ाई एक रज्जु से लेकर सात रज्जु तक हैं।

रज्जु क्षेत्रफल मापने का एक माप हैं। जैसे किलोमीटर, मील, फर्लांग, गाउ, योजन आदि हैं, उसी प्रकार असंख्य योजन प्रमाण एक रज्जु होता हैं।

लोक का आकार -

लोक का आकार सुव्यवस्थित सरावला (दीपक) के समान हैं। अर्थात् एक दीपक सीधा फिर उसके उपर एक उल्टा दीपक और उसके उपर तीसरा सीधा दीपक

रखने के बाद जो आकृति बनती हैं, वैसा या एक पुरुष अपने पैरों को फैलाकर और अपने हाथों को अपनी कमर पर रखकर खड़ा हैं, उस समय उसका जो आकार दिखें वैसा आकार...

लोक के विभाग -

लोक के 3 विभाग हैं।

1. अधोलोक 2. मध्यलोक 3. उर्ध्वलोक

अधोलोक - लोक के निचले भाग को अधोलोक कहा जाता हैं। अधोलोक का आकार उल्टे दीपक जैसा हैं, इसकी ऊंचाई सात रज्जु से थोड़ी अधिक हैं।

अधोलोक में मुख्यतः सात नारकीय क्षेत्र हैं। उन सात नारकीय पृथ्वियों के नाम - रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमसप्रभा, तमःतमसप्रभा

इस में नारकी के निवास स्थान - नरकावास हैं। इसके अलावा प्रथम पृथ्वी में भवनपति देवों के भवन भी हैं।

अधोलोक में चारों गति के जीव रहते हैं।

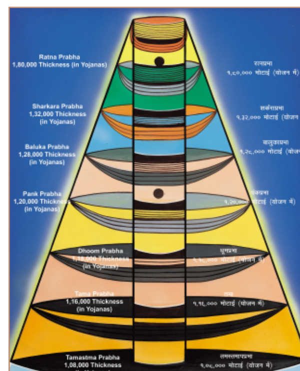

सात नारकीय पृथ्वि

अधोलोक की प्रथम पृथ्वी का नाम रत्नप्रभा हैं। इसका पिंड एक लाख 80 हजार योजन हैं। उसमें एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे छोड देने पर बिच में एक लाख 78 हजार योजन की जगह हैं। इसमें तेरह पाथडा और बारह आंतरे हैं। ऊपरी दो आंतरे के भागों को छोड, शेष आंतरे में क्रमशः 10 भवनपति देवों के निवास हैं। भवनपति देव सिर्फ प्रथम पृथ्वी के आंतरे में ही निवास करते हैं। अन्य पृथ्वी के आंतरे खाली हैं।

जिस प्रकार हमारे घर में कमरे आदि होते हैं और उसके ऊपर छत होती हैं, उसी प्रकार कमरे आदि वाले स्थान को 'आंतरा' और छत जैसे स्थान को 'पाथडा' कहा जाता हैं। एक पर दूसरी मंजिल और दूसरे के उपर तीसरी मंजिल होती हैं, इस तरह से ये पाथडा और आंतरा हैं।

भवनपति के भवन सात करोड़ 72 लाख हैं। भवनपति के भवन सबसे छोटे

जंबूद्वीप प्रमाण एक लाख योजन हैं। मध्यम संख्यात योजन के हैं और सबसे बडे तो असंख्यात योजन के भी हैं।

वहाँ उपपात शैय्या होती हैं। जिस में देवताओं का जन्म होता हैं। इन भवनों में भवनपति के असंख्य देवता निवास करते हैं।

नारकी के जीव पाथडें में रहते हैं। पाथडें अंदर रहने लायक हैं, वहाँ नरक आवास हैं। वहाँ नारकी के जीव रहते हैं।

नरकावास भी संख्यात्मक और असंख्यात्मक योजन लंबे चौडे होते हैं। ऐसे 84 लाख नरकावास हैं।

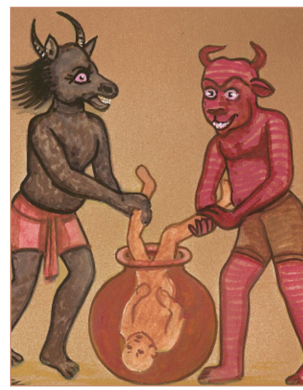

इन नरकों में असंख्य नारकी रहते हैं। नरकवास में असंख्य कुंभियाँ हैं जो नीचे से चौड़ी और ऊपर से संकरी हैं। इसमें नारकीय जीव उत्पन्न होते हैं। कुंभी का मुँह संकरा होने के कारण नारकी बाहर नहीं निकल पाते। उस समय परमधामी देव उनके शरीर के टुकड़े टुकड़े कर उन्हें कुंभी से बाहर निकालते हैं।

उनका आयुष्य निरुपक्रमी अर्थात् कोई भी निमित्त से आयुष्य टूटता नहीं हैं। इस वजह से नारकी जीवों की अकाल मृत्यु होती नहीं हैं। जब उनका आयुष्य पूर्ण होता हैं, तभी उनकी मृत्यु होती हैं और शरीर वैक्रिय होता हैं, इस वजह से वे सभी टुकड़े एक दुसरे के साथ जुड जाते हैं।

नारकी जीव जीवन भर कष्ट सहते रहते हैं। वे अनंत सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, भय, चिंता, पराधीनता, रोग, खुजली, दाह आदि दस प्रकार के कष्ट भुगतते हैं। परमाधामी उन्हें तीन नरकों तक भयंकर कष्ट देते हैं। उससे ऊपर की नरक में वे स्वयं एक-दूसरे को कष्ट देते हैं। इस तरह नरक में क्षेत्रकृत वेदना, देवकृत वेदना एवं परस्परकृत वेदना, ये तीन प्रकार की वेदना होती हैं।

भवनपति देवों में एक जाति परमधामी देवों की हैं।

वे प्रथम आंतरे में असुरकुमार देवों के साथ निवास करते हैं।

अधोलोक में महाविदेह की दो विजय वप्रा और सलिलावती सौ योजन तक गई हैं। उसमें मनुष्य और तिर्यंच रहते हैं।

महाविदेह क्षेत्र की वप्रा और सलिलावती यह दो विजय समपृथ्वी से (हम रहते

हैं, उस पृथ्वी से) एक हजार योजन नीचे तक गई हैं। इसके नौसौ योजन मध्यलोक में हैं और अगले सौ योजन अधोलोक में हैं, इसलिए कई नगरों और गाँवों को अधोलोक का कहा जाता हैं। वहाँ के मनुष्य, तिर्यंच पंचेद्रिय आदि जीव, अधोलोकवासी कहलाते हैं। अधोलोक में जो मानव क्षेत्र हैं, वहाँ पाँच प्रकार के स्थावर और विकलेन्द्रिय जीव भी रहते हैं।

इतना ही नहीं, वहाँ तीर्थंकर भगवान का जन्म भी होता हैं। चतुर्विध संघ, जैन शासन, केवली भगवंत आदि सब यहाँ के समान ही होता हैं।

अधोलोक में अन्य नरक पृथ्वियाँ रत्नप्रभा पृथ्वी से नीचे कमशः आई हैं। इन सभी पृथ्वियों में पाथडा और आंतरा हैं। आंतरा खाली हैं, नारकी के जीव पाथडा में रहते हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी जिस स्थान पर पूरी होती हैं, उसके नीचे बीस हजार योजन घनोदधि (बर्फ जैसा पानी) हैं। घनोदधि के नीचे असंख्याता योजन का घनवायु (घनीभूत वायु) हैं। उसके नीचे असंख्य योजन (पतली हवा) तनवायु हैं। उसके नीचे असंख्य योजन का आकाश हैं। उसके बाद दूसरी पृथ्वी शुरू हो जाती हैं। इस प्रकार सातों पृथ्वियों के बाद अनंत अलोक प्रारंभ होता हैं।

मध्यलोक - लोक के केंद्र को मध्यलोक कहा जाता हैं। मध्यलोक एक रज्जु लंबा चौड़ा और 1800 योजन ऊँचा हैं।

अघोलोक अधोदिशा यानी नीची दिशा में और उर्ध्वलोक उर्ध्व दिशा यानी ऊंची दिशा में आगे बढता हैं। जब कि मध्यलोक ऊंची और नीची दिशा में केवल 900-900 योजन ही हैं और तिरछी दिशा में यानी कि चारों दिशाओं में फैला हुआ हैं, इसलिए उसे तिरछालोक कहा जाता हैं।

मध्यलोक में असंख्य द्वीप समुद्र हैं। वाणव्यंतर के असंख्य नगर हैं। असंख्य ज्योतिषीय देवताओं के विमान और असंख्य देवताओं की राजधानियाँ हैं। नारकी के अतिरिक्त अन्य तीन गति के जीव मध्यलोक में रहते हैं।

जंबूद्वीप मध्यलोक के मध्य में हैं। यह एक लाख योजन का हैं, उसके चारों ओर घूमता हुआ लवण समुद्र हैं। वह पूर्व-पश्चिम दो-दो लाख योजन का हैं, याने चार लाख योजन होता हैं। इसके चारों ओर घातकीखंड द्वीप हैं। वह पूर्व-पश्चिम चार चार लाख योजन अर्थात् आठ लाख योजन हैं। उसके चारों ओर घूमता हुआ कालोदधी समुद्र हैं। वह पूरब-पश्चिम आठ-आठ लाख योजन का यानि सोला लाख योजन का हैं। अर्धपुष्कर द्वीप इसके चारों ओर घिरा हुआ हैं। यह सोला लाख योजन होता हैं। इस प्रकार असंख्यात द्वीप समुद्र एक रज्जु प्रमाण मध्यलोक में फैले हुए हैं। ढाईद्वीप 1 + 4 + 8 + 16 +16 = 45 लाख योजन का होता हैं।

सिर्फ एक जंबूद्वीप का आकार थाली जैसा हैं। बाकी सभी समुद्र और द्वीप, एक के चारों ओर दूसरा और दूसरे के चारों ओर तीसरा, इस प्रकार होने के कारण सब के आकार चूड़ियाँ और वलय जैसे होते हैं। मनुष्य केवल ढाई द्वीप समुद्रों में ही रहते हैं। ढाईद्वीप में जंबूद्वीप, घातकीखंड, अर्धपुष्करद्वीप और लवण तथा कालोदधि समुद्र इन पाँच का समावेश होता हैं। यह ढाईद्वीप और समुद्र का क्षेत्रफल 45 लाख योजन का हैं।

पुष्करद्वीप में बीचोबीच चूड़ी के आकार का मानुषोत्तर पर्वत हैं। उस पर्वत के उस पार मनुष्य नहीं रहते, अर्धद्वीप में ही रहते है इसलिए इसे अर्धपुष्कर द्वीप कहा जाता हैं।

ढाईद्वीप समुद्रों में मनुष्य रहते हैं, बाकी सभी द्वीप समुद्रों में मनुष्यों को छोड़कर सिर्फ तिर्यंच पंचेन्द्रिय यानि पशु-पक्षी, जलीय जीव-जंतु आदि रहते हैं। विकलेन्द्रिय, स्थावर जीव भी वहाँ निवास करते हैं, साथ ही चारों जाति के देवताओं की राजधानियाँ भी वहाँ पर हैं। देवी-देवता अक्सर वहाँ क्रिडा करने – आनंद-प्रमोद करने आते रहते हैं।

ढाईद्वीप समुद्र में मानव के रहने योग्य 101 क्षेत्र हैं, वे इस प्रकार हैं।

15 कर्मभूमि, 30 अकर्मभूमि और 56 अंतरद्वीप।

पाँच भरत, पाँच ऐरवत और पाँच महाविदेह यह 15 कर्मभूमि हैं। कर्मभूमि के क्षेत्र इस प्रकार स्थित हैं। एक एक भरत क्षेत्र, ऐरवत क्षेत्र और महाविदेह क्षेत्र जंबूद्वीप में स्थित हैं। दो दो क्षेत्र घातकीखंड में स्थित हैं और दो दो क्षेत्र अर्धपुष्करद्वीप में हैं।

जो तीस अकर्मभूमियाँ हैं वह पाँच देवकुरु, पाँच उत्तरकुरु, पाँच हरिवास, पाँच रम्यकवास, पाँच हेमवय और पाँच हिरण्यवय के नाम से पहचानी जाती हैं। इनमें से एक-एक जंबूद्वीप में, दो दो घातकीखंड में और दो दो अर्धपुष्करद्वीप में हैं। इनमें से जंबूद्वीप में 1 हेमवय, 1 हिरणवय, 1 हरिवास, 1 रम्यकवास, 1 देवकुरु और 1 उत्तर

कुरु कुल 6 अकर्मभूमि के क्षेत्र है।

घातकीखंड और अर्धपुष्करद्वीप में हर क्षेत्र 2-2 है। वहां 12-12 क्षेत्र है।

इस तरह 6 + 12 + 12 = 30 अकर्मभूमि के क्षेत्र हैं।

56 अंतरद्वीप के क्षेत्र लवण समुद्र में स्थित हैं।

चुलहिमवंत पर्वत से भरत क्षेत्र की और शिखरी पर्वत से ऐरवत क्षेत्र की सीमा निर्धारीत होती हैं। इन दोनों पर्वतों के पूर्व और पश्चिम दिशा में लवण समुद्र में सात सात की लाइन में कुल 56 द्वीप हैं। उन द्वीपों पर मनुष्य रहते हैं।

ये द्वीप लवण समुद्र के अंदर है और एक दूसरे के बीच अंतर पर स्थित है, इसलिए इन द्वीपों को अंतर्द्वीप कहा जाता हैं। ये द्वीप दाढ के आकार के हैं। कालोदधि समुद्र में ऐसे कोई द्वीप नहीं हैं, इसलिए वहाँ मनुष्य नहीं रहते।

मध्यलोक में सबसे अंत में स्वयंभूरमण समुद्र आता हैं। मध्यलोक का प्रत्येक द्वीप समुद्र एक से दूसरा दो गुना बड़ा हैं और दुसरे से तीसरा दो गुना बड़ा हैं। ऐसा होते होते अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र ने पूरे मध्यलोक का आधा स्थान घेर रखा हैं अर्थात् अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र आधा रज्जु बराबर हैं।

मध्यलोक में समपृथ्वी के नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी के उपर के 1000 योजन में से 100 योजन नीचे और 100 योजन ऊपर छोडकर, बीच में 800 योजन की रिक्त जगह हैं। इसमें वाणव्यंतर देवताओं की 16 जातियाँ निवास करती हैं। उनके निवास स्थान को नगर कहते हैं।

मध्यलोक में असंख्य द्वीप हैं, सभी द्वीपों के नीचे वाणव्यंतर के नगर हैं।

प्रत्येक नगर भरत क्षेत्र, महाविदेह क्षेत्र या जंबूद्वीप क्षेत्र जितने हैं। ऐसे असंख्य नगर हैं।

हर समुद्र एक हजार योजन गहरे हैं और नगर रत्नप्रभा पृथ्वी के उपर के 900 योजन में ही हैं। इसलिए समुद्र के नीचे कोई नगर नहीं हैं।

ऊपर 100 योजन छोड दिए, उसमें भी देवता रहते हैं, इन 100 योजन में से दस योजन ऊपर और दस योजन नीचे को छोड बीच के 80 योजन की रिक्त जगह हैं। जिसमें दस जाति के जृभंक देव रहते हैं। जिनके नगर वाणव्यंतर देव के नगर समान समझना। पहाड़ों, जंगलों आदि में भी वे रहते हैं।

ज्योतिषीय देवताओं के निवास समपृथ्वी से 790 योजन ऊपर शुरू होते हैं। ऊपर 900 योजन तक अर्थात् 110 योजन में इनके आवास हैं। सूर्य, चंद्रमाँ, ग्रह, नक्षत्र, तारों को ज्योतिषी देवता कहा जाता हैं। तिरछालोक में उनके निवास असंख्य द्वीप समुद्र के ऊपर असंख्य हैं।

ज्योतिषीय देवताओं के विमान (निवास) अर्धकोठा के आकार में अर्धगोलाकार हैं।

जो ढाईद्वीप समुद्र रूप क्षेत्र हैं, चूँकि मनुष्य उस क्षेत्र में रहते हैं इसलिए उसे मानव क्षेत्र कहा जाता हैं एवं ढाईद्वीप समुद्र में ही चँद्र-सूर्य आदि ज्योतिषी देवों की गति होने के कारण वहाँ दिन–रात आदि काल परिवर्तन होता हैं। समय केवल वहीं परिवर्तित होता हैं इसलिए वह समय क्षेत्र के रूप में भी जाना जाता हैं। ढाई द्वीप के बाहर चँद्र-सूर्य स्थिर हैं, सो वहाँ रात-दिन आदि नहीं होते।

बादर अग्नि केवल ढाईद्वीप क्षेत्र में हैं। 14 राजलोक में अन्यत्र कहीं नहीं।

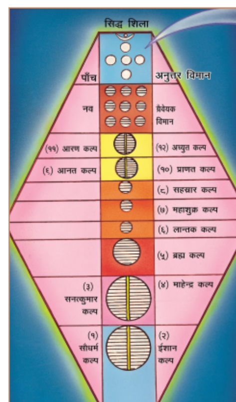

वैमानीक देवों के आवास

उर्ध्वलोक - ऊर्ध्वलोक की ऊंचाई सात रज्जु से थोड़ी कम हैं। मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक मिलकर सात रज्जु से थोड़ा कम हैं।

ऊर्ध्वलोक ऊर्ध्व मृदंग के आकार में है।

ऊर्ध्वलोक ज्योतिषीय देवों के विमान से ऊपर अर्थात् समपृथ्वी से 900 योजन ऊपर प्रारंभ होता हैं।

मेरुपर्वत - मेरु पर्वत मध्यलोक के जंबूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में हैं। उसकी ऊंचाई एक लाख योजन हैं। अत: वह तीनों लोक को स्पर्श करता हैं। यह पर्वत संपूर्णतः सुवर्णमय हैं।

मेरु पर्वत समपृथ्वी से एक हजार योजन नीचे गया हैं, अत: इसका 100 योजन अधोलोक में हैं और 99 हजार योजन ऊपर हैं। मध्यलोक समपृथ्वी से केवल 900 योजन ऊपर हैं, अत: इसका शेष भाग ऊर्ध्वलोक में हैं। इस तरह मेरु पर्वत के 100 योजन अधोलोक में, 1800 योजन मध्यलोक में और शेष भाग ऊर्ध्वलोक में हैं। 98,100 योजन उर्ध्वलोक में हैं।

मेरु पर्वत की चौड़ाई ज़मीन पर दस हज़ार योजन हैं। यह क्रमशः घटते घटते सबसे उपर 100 योजन रह जाती हैं। उस पर्वत पर चार विशाल वन हैं। वह इस तरह –

भद्रशालवन, नंदनवन, सोमनसवन और पंडगवन। उनमें से प्रथम दो वन मध्यलोक में और दो वन ऊर्ध्वलोक में हैं। उन वनों में तिर्यंच यानी पशु-पक्षी- विकलेन्द्रीय और स्थावर जीव रहते हैं। उन वनों में वावडियाँ भी हैं। इसमें जलीय जीव (जलचर) रहते हैं।

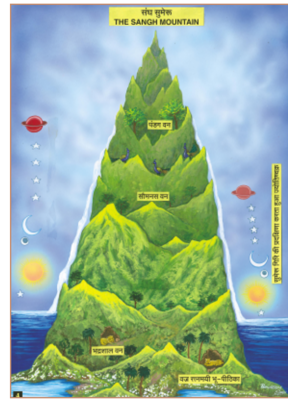

तीर्थंकर प्रभु के जन्मोत्सव की अभिषेक शिलाएँ मेरु पर्वत के सबसे ऊपर पंडगवन में स्थित हैं। भगवान के जन्म के बाद, इंद्र इन शिलाओं पर ही भगवान का अभिषेक करते हैं।

ऊर्ध्वलोक शुरू होता हैं वहाँ से असंख्यात योजन उपर जाने पर वैमानिक देवताओं के विमान (निवास) हैं। उन विमानों में असंख्यात वैमानिक देवता निवास करते हैं। उर्ध्वलोक के देवों के आवासों को विमान कहा जाता हैं। वहाँ के देव वैमानिक देव कहलाते है। उर्ध्वलोक में क्रमशः उपर 12 देवलोक, नौ ग्रैवेयक विमान एवं 5 अनुत्तर विमान हैं। एकेक देवलोक में हजारों या लाखों विमान हैं। वह सब मिलकर देवों के आवास रूपी 84,97,023 विमान हैं।

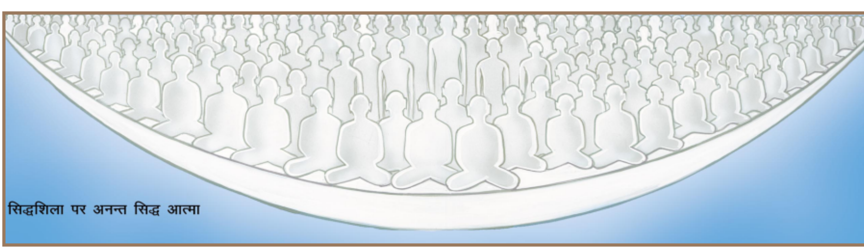
सिद्धशिला पर अनन्त सिद्ध आत्मा

ऊर्ध्वलोक में सबसे उपर सिद्धशिला हैं और उसके ऊपर लोक के अंत में सिद्ध क्षेत्र हैं। वहाँ अनंत सिद्ध भगवंत निरंजन–निराकार, अनंत आत्मिक आनंद की लहर में बिराजमान हैं।

हमने तीनों लोक के इन सभी क्षेत्रों में 5 अनुत्तर विमानो को छोड कर अनंत अनंत बार जन्म और मरण किए हैं। अब शीघ्राती शीघ्र द्रढ सम्यकत्व को धारणकर, भगवान की आज्ञा के अनुसार आराधना कर, सभी कर्मो का नाश कर सिद्ध स्वरूप में सिद्ध क्षेत्र में स्थित हो जाए ऐसा पुरुषार्थ करना हैं। चौदह राजलोक का वर्णन प्रमुखता से आता हैं: श्री जीवाजीवाभिगम आगम सूत्र में।

• 14 राजलोक •

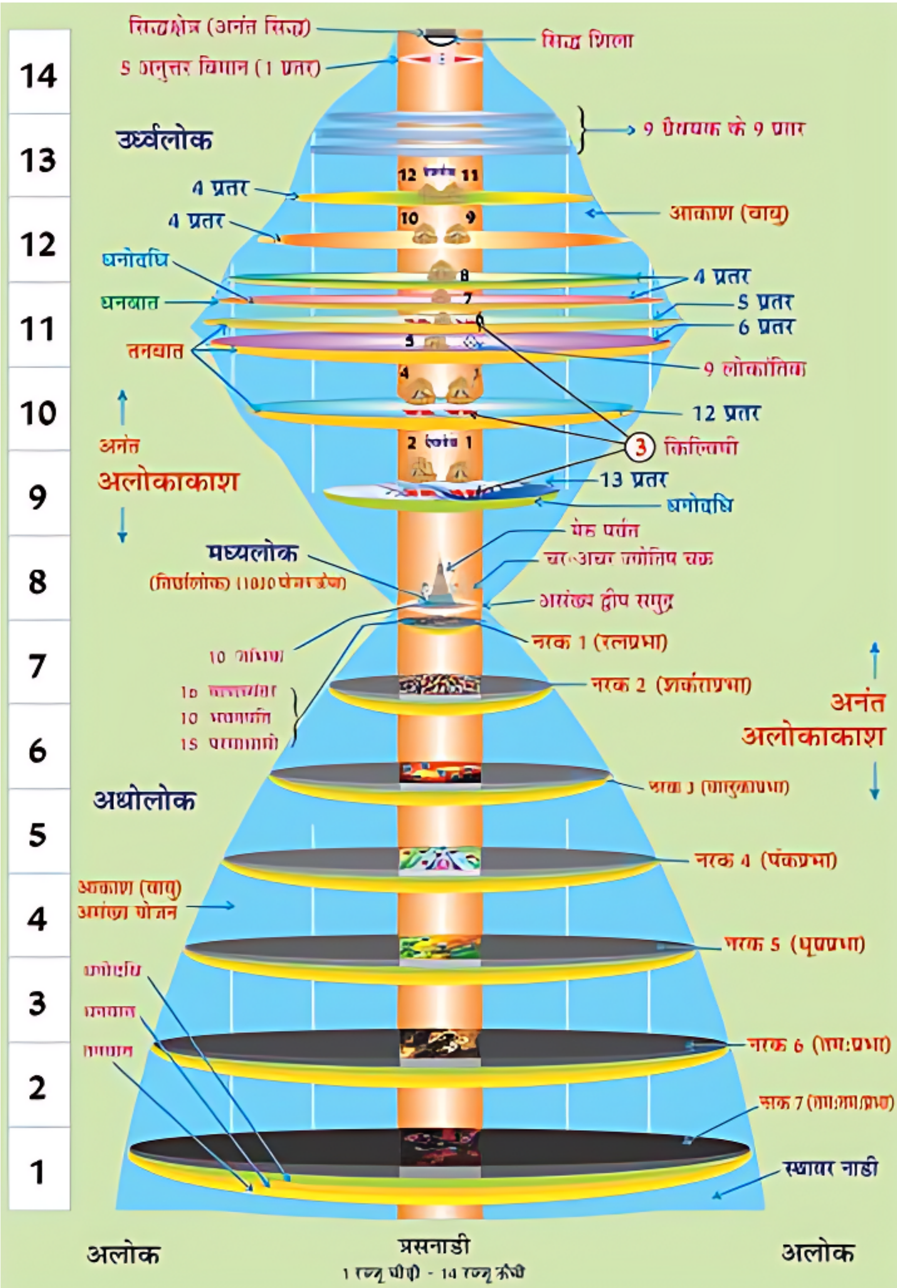
14
13
12
11
10
9
8
7
6
5
4
3
2
1
सिद्ध शिला
उर्ध्वलोक
4 प्रतर
4 प्रतर
आकाश (वायु)
घनोदधि
घनवात
तनवात
4 प्रतर
5 प्रतर
6 प्रतर
9 लोकांतिक
12 प्रतर
3 किल्विषी
13 प्रतर
अनंत
अलोकाकाश
घनोदधि
मेरु पर्वत
मध्यलोक
असंख्य द्वीप समुद्र
नरक 1 (रत्नप्रभा)
नरक 2 (शर्कराप्रभा)
अनंत
अलोकाकाश
अधोलोक
नरक 4 (पंकप्रभा)
नरक 5 (धूमप्रभा)
स्थावर नाडी
अलोक
त्रसनाडी
अलोक

खंड - 3 तत्त्व एवं संस्कार विभाग

पैंतीस बोल

❖ पहला बोल - गति चार

गति का अर्थ हैं गमन करना।

1. नरक, 2. तिर्यंच,

3. मनुष्य, 4. देवता

❖ दूसरा बोल - जाति पाँच

जीवों के विभिन्न विभागों को जाति कहा जाता हैं। जाति नामकर्म से एकेन्द्रिय आदि दर्जा मिलता हैं।

1. एकेन्द्रिय जाति 2. बेईन्दिय जाति

3. तेईन्द्रिय जाति 4. चौरेन्द्रिय जाति

5. पंचेन्द्रिय जाति

❖ तीसरा बोल - काय छह

शरीर या समूह को काय कहते हैं।

1. पृथ्वीकाय, 2. अपकाय,

3. तेउकाय, 4. वाउकाय,

5. वनस्पतिकाय, 6. त्रसकाय।

❖ चौथा बोल - इन्द्रिय पाँच

द्रश्यमान पदार्थो को आंशिक रूप से जानने में सहायभूत होती हैं, उसे इन्द्रिय कहते हैं। प्रत्येक इन्द्रिय शब्द-रूप-रस-गंध-स्पर्श इनमें से स्वंय के विषय को ग्रहण करती हैं।

1. श्रोतेन्द्रिय 2. चक्षुरिन्द्रिय

3. घ्राणेन्द्रिय 4. रसनेन्द्रिय

5. स्पर्शेन्द्रिय

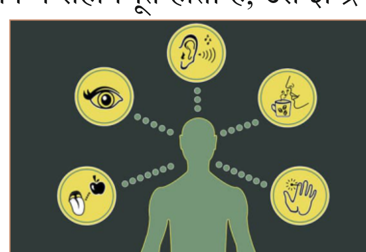

❖ पाँचवां बोल - पर्याप्ति छह

जीव की पौद्गलिक शक्ति, जिस के द्वारा जीव आहार आदि के पुद्गलों को शरीर, इन्द्रिय आदि रुप में बदलने की प्रक्रिया पूर्ण करता हैं, उसे पर्याप्ति कहते हैं और उसकी अपूर्णता को अपर्याप्ति कहते हैं। जिस जीव को जितनी पर्याप्तिओं का निर्माण करना होता हैं, वह जब तक पूर्ण रूप से निर्मित न हो जाए तब तक अपर्याप्त कहलाता हैं। जब जितनी पर्याप्ति मिलनी हो उतनी संपूर्ण बांध ले उसके बाद वह पर्याप्त कहलाता हैं।

1. आहार, 2. शरीर, 3. इन्द्रियाँ,
4. श्वासोश्वास, 5. भाषा, 6. मन।

❖ छट्ठा बोल - प्राण दस

प्राण वह हैं जिसके संयोग से सांसारिक जीवों को सुनना, देखना आदि क्रियाएँ होती हैं। प्राण = जीवन शक्ति - जिसके द्वारा जीव जीवित हैं - प्राण कहलाती हैं।

प्राण 10 प्रकार के होते हैं

1. श्रोतेन्द्रिय बलप्राण 2. चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण
3. घ्राणेन्द्रिय बलप्राण 4. रसनेन्द्रिय बलप्राण
5. स्पर्शेन्द्रिय बलप्राण 6. मन बलप्राण
7. वचन बलप्राण 8. काय बलप्राण
9. श्वासोश्वास बलप्राण 10. आयुष्य बलप्राण

❖ सातवा बोल: शरीर पाँच:

शिर्यते इति शरीर - जो शिर्ण-विशिर्ण - नाशवंत है, वह शरीर कहलाता हैं। संसारी जीव को रहने का स्थान, वह शरीर हैं।

1. औदारिक, 2. वैक्रिय, 3. आहारक,
4. तैजस्, 5. कार्मण

❖ आठवां बोल: योग पंद्रह

योग का अर्थ हैं मन, वचन और शरीर की प्रवृत्तियाँ, व्यापार।

मन के 4, वचन के 4, काया के 7 कुल 15 योग हैं।

1. सत्य मनयोग, 2. असत्य मनयोग,
3. मिश्र मनयोग, 4. व्यवहार मनयोग,

5. सत्य वचनयोग, 6. असत्य वचनयोग,
7. मिश्र वचनयोग, 8. व्यवहार वचनयोग,
9. औदारिक शरीर काययोग, 10. औदारिक शरीर मिश्रकाययोग,
11. वैक्रिय शरीर काययोग, 12. वैक्रिय शरीर मिश्रकाययोग,
13. आहारक शरीर काययोग, 14. आहारक शरीर मिश्रकाययोग,
15. कार्मण काययोग।

❖ नौवा बोल: उपयोग 12:

ज्ञान, दर्शन में आत्मा के प्रवर्तन को उपयोग कहते हैं।

ज्ञान का अर्थ हैं किसी चीज़ को विशेष रूप से जानना।

दर्शन का अर्थ हैं किसी वस्तु को सामान्य रूप से देखना।

1. मति ज्ञान, 2. श्रुत ज्ञान, 3. अवधि ज्ञान,
4. मन:पर्यव ज्ञान, 5. केवल ज्ञान, 6. मति अज्ञान,
7. श्रुत अज्ञान, 8. विभंग ज्ञान, 9. चक्षु दर्शन,
10. अचक्षु दर्शन, 11. अवधि दर्शन, 12. केवल दर्शन।

वस्तु को यथार्थ रूप से जाने वह ज्ञान। वस्तु को कम, अधिक या विपरीत रूप से जाने वह अज्ञान। मिथ्या दृष्टि के बोध को अज्ञान और सम्यक् दृष्टि के बोध को ज्ञान कहा जाता हैं।

❖ दसवा बोल: कर्म आठ:

जो जीव के साथ मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग के कारण बँधता हैं, उसे कर्म कहते हैं।

1. ज्ञानावरणीय, 2. दर्शनावरणीय, 3. वेदनीय,
4. मोहनीय, 5. आयुष्य, 6. नाम,
7. गोत्र, 8. अंतराय।

❖ ग्यारहवां बोल: गुणस्थान 14:

मोह और योग के कारण आत्मा की ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप गुणों की तरतमता (कम, अधिक) वाली अवस्था को गुणस्थान कहा जाता हैं।

1. मिथ्यात्व,	2. सास्वादन,
3. मिश्र,	4. अविरति सम्यक् दृष्टि,
5. देशविरति (श्रावक),	6. प्रमत्त संयति (भिक्षु),
7. अप्रमत्त संयति,	8. निर्वृत्ति बादर,
9. अनिर्वृत्ति बादर,	10. सूक्ष्म संपराय,
11. उपशांत मोहनीय,	12. क्षीण मोहनीय,
13. सयोगी केवली,	14. अयोगी केवली।

❖ बारवा बोल: पाँच इंद्रियों के विषय 23:

आत्मा जिन जिन इन्द्रियों के माध्यम से जिन जिन पदार्थों को ग्रहण करता हैं उन्हें उन इन्द्रियों के विषय कहते हैं।

श्रोतेन्द्रिय के 3 विषय: सजीव शब्द, निर्जीव शब्द, मिश्रित शब्द।

चक्षुरिन्द्रिय के 5 विषय - काला, नीला, लाल, पीला, सफेद।

घ्राणेन्द्रिय के 2 विषय - सुरभिगंध, दुरभिगंध।

रसनेन्द्रिय के 5 विषय - तीखा, कड़वा, कसैला (तुरा), खट्टा, मीठा।

स्पर्शेन्द्रिय के 8 विषय - कोमल, खुरदरा, हल्का, भारी, गर्म, ठंडा, रूक्ष, स्निग्ध

❖ तेरवा बोल: पच्चीस प्रकार के मिथ्यात्व (प्रतिक्रमण के पुस्तक अनुसार)

❖ चौदवा बोल: नौ तत्वों के ज्ञान के 115 बोल:

तत्व का अर्थ हैं जिसका शाश्वत अस्तित्व हैं।

नौ तत्व इस प्रकार हैं।

1. जीव	2. अजीव	3. पुण्य
4. पाप	5. आश्रव	6. संवर
7. निर्जरा	8. बंध	9. मोक्ष

नौ तत्व का सारांश इस प्रकार हैं।

जीव के 14 भेद : सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय। इन सात के अपर्याप्त और पर्याप्त मिलके 7x2 = 14

अजीव के 14 भेद: धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय के स्कंध, देश, प्रदेश ये तीन -तीन इस तरह 9 और 10 वा भेद काल हैं। पुद्गल के - स्कंध, देश, प्रदेश और परमाणु ये 4 मिलकर 14 भेद।

पुण्य के 9 भेद: 1. अन्न पुण्णे, 2. पाण पुण्णे, 3. लयन पुण्णे, 4. शयण पुण्णे , 5. वत्थ पुण्णे , 6. मन पुण्णे, 7. वचन पुण्णे, 8. काय पुण्णे, 9. नमस्कार पुण्णे।

पाप के 18 भेद: अट्ठारह पाप स्थानक। (प्रतिक्रमण पुस्तक के अनुसार)

आश्रव के 20. भेद: 1. मिथ्यात्व, 2. अव्रत, 3. प्रमाद, 4. कषाय, 5. अशुभयोग, 6. प्राणातिपात, 7. मृषावाद, 8. अदत्तादान, 9. मैथुन, 10. परिग्रह, 11. श्रोतेन्द्रिय, 12. चक्षुरेन्द्रिय, 13. घ्राणेन्द्रिय, 14. रसनेन्द्रिय, 15. स्पर्शेन्द्रिय, 16. मन, 17. वचन, 18. काया इन आठ को (11 से 18) नियंत्रित नहीं रखना, मुक्त रखना 19. भंड उपकरन की जतना न रखें 20. शुचि कुसग्गा करें यानि सुई के अग्रभाग जितनी अर्थात् अल्प से अल्प भी हिंसा करें

संवर के 20 भेद: 1. समकित, 2. प्रत्याख्यान, 3. अप्रमाद, 4. अकषाय, 5. शुभयोग, 6. जीवदया, 7. सत्य वचन, 8. अदत्तादान त्याग, 9. ब्रह्मचर्य, 10. अपरिग्रह, 11 से 18. पाँच इन्द्रियों और तीन योगों को वश में करना, 19. भंड उपकरन की यत्ना करें, 20. शुचि कुसग्ग नहीं करें। जीव मात्र की दया रखें।

निर्जरा के 12 भेद : 1. अनसन, 2. उणोदरी, 3. वृत्तिसंक्षेप, 4. रसपरित्याग 5. कायक्लेश, 6. प्रतिसंलिनता, 7. प्रायश्चित, 8. विनय, 9. वैयावच्च, 10. सज्झाय, 11. ध्यान, 12. कायोत्सर्ग।

बंध के 4 भेद: 1. प्रकृति बंध, 2. स्थिति बंध, 3. अनुभाग बंध, 4. प्रदेश बंध।

मोक्ष के 4 मार्ग: 1. ज्ञान, 2. दर्शन, 3. चरित्र, 4. तप।

❖ पँद्रहवां बोल: आत्मा 8:

आत्मा को उन गुणों के नाम से जाना जाता हैं, जिस समय आत्मा में उन गुण या अवगुण की प्रधानता होती हैं। जैसे - जब कषाय भाव में होता हैं, तब कषाय आत्मा,

ऐसा आठ आत्माओं के लिए समझना हैं

1. द्रव्य आत्मा, 2. कषाय आत्मा, 3. योग आत्मा,
4. उपयोग आत्मा, 5. ज्ञानात्मा, 6. दर्शन आत्मा,
7. चरित्र आत्मा, 8. वीर्य आत्मा।

❖ सोलहवा बोल: दंडक 24:

जहाँ जीव जन्म लेकर कर्मो का दंड भुगतता हैं, उसे दंडक कहा जाता हैं।

सात नरकों का 1 दंडक; भवनपति के 10 दंडक (असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युतकुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार, स्तनितकुमार), पांच स्थावर के 5 दंडक (पृथ्विकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय), विकलेन्द्रिय के 3 दंडक (बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय, चौरेंन्द्रिय) 1. तिर्यंच पंचेन्द्रिय का 1, मनुष्य का 1, वाणव्यंतर देवों का 1, ज्योतिषी देवों का 1, वैमानिक देवों का 1= कुल 24

❖ सत्तरहवा बोल: लेश्या छह

कषाय और योग की क्रिया से उत्पन्न होने वाले आत्मा के शुभ और अशुभ परिणाम को लेश्या कहा जाता हैं। छह लेश्याओं में प्रथम तीन अप्रशस्त (अशुभ) और अंतिम तीन प्रशस्त (शुभ) हैं।

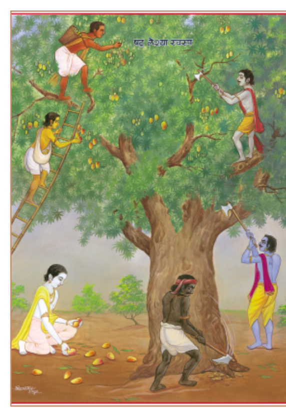

1. कृष्ण लेश्या, 2. नील लेश्या,
3. कापोत लेश्या 4. तेजो लेश्या,
5. पद्म लेश्या, 6. शुक्ल लेश्या

❖ अट्ठारहवा बोल: दृष्टि तीन:

तत्त्व चिंतन की पद्धति को 'दृष्टि' कहते हैं।

1. समकित दृष्टि, 2. मिथ्यात्व दृष्टि,
3. मिश्र दृष्टि।

❖ उन्निसवा बोल: ध्यान चार:

किसी एक विषय पर मन को केन्द्रित करना ध्यान कहलाता हैं।

1. आर्तध्यान, 2. रौद्रध्यान, 3. धर्मध्यान, 4. शुक्लध्यान।

❖ **बीसवा बोल: छह द्रव्य के तीस बोल:**

जो सदैव बना रहें, जिसमें अनंत गुण और अनंत पर्यायें होती हैं, उसे द्रव्य कहते हैं।

प्रदेशों के समूह को अस्तिकाय कहा जाता हैं। छह द्रव्यों में काल द्रव्य सिवाय के पांच द्रव्य प्रदेशों के समूह रूप हैं, सो वे अस्तिकाय रूप हैं। काल द्रव्य अस्ति रूप हैं, किंतु वह प्रदेशों के समूह रूप नहीं हैं इसलिए वह अस्तिकाय रूप नहीं हैं।

1. धर्मास्तिकाय: जीव और पुद्गल जिसके माध्यम से गति कर सकते हैं वह धर्मास्तिकाय। जिस प्रकार एक मछली अपने आप चल सकती हैं, पर पानी उसकी गति में सहायता करता हैं।

धर्मास्तिकाय के पांच बोल: द्रव्य से - एक, क्षेत्र से - लोका लोक के प्रमाण, काल से - अनादि अनंत, भाव से - अरूपी, गुण से – चलन सहाय, गति सहाय।

2. अधर्मास्तिकाय : जिसके द्वारा जीव और पुद्गल स्थिर हो सकते हैं वह अधर्मास्तिकाय। जैसे पेड़ की छाया थके हुए यात्री को स्थिर होने में मदद करती हैं।

अधर्मास्तिकाय के पांच बोल: द्रव्य से - एक, क्षेत्र से - लोक प्रमाण, काल से - अनादि अनंत, भाव से - अरूपी, गुण से - स्थिर सहाय।

3. आकाशास्तिकाय : जो सभी पदार्थों को रिक्त स्थान (आकाश) देता हैं, वह आकाशास्तिकाय हैं। जैसे एक कील ठोस दिवार में घुस जाती हैं।

आकाशास्तिकाय के पाँच बोल: द्रव्य से – एक, क्षेत्र से - लोका लोक प्रमाण, काल से - अनादि अनंत, भाव से - अरूपी, गुण से - अवगाहनादान (स्थान देना)।

4. काल : जिससे नए-पुराने की पहचान होती हैं। समय (दिन, रात आदि) को सूर्य और चँद्रमा की गति से मापा जाता हैं।

काल के पांच बोल: द्रव्य से - अनंत, क्षेत्र से- ढाई द्वीप प्रमाण, काल से- अनादि अनंत, भाव से- अरूपी, गुण से - नए को पुराना और पुराने को नया बनाता है

5. पुद्गलास्तिकाय : जड़ पदार्थ जिनका स्वभाव सडन, पडन, विनाश हैं।

पुद्गलास्तिकाय के पांच बोल: द्रव्य से - अनंत, क्षेत्र से - लोक प्रमाण, काल से - अनादि अनंत, भाव से - रूपी, गुण से - गलना और मिलना। (सड़न, पडन, विनाश।)

6. जीवास्तिकाय - जिसमें चेतना हो वह जीव।

जीवास्तिकाय के पांच बोल : द्रव्य से - अनंत, क्षेत्र से – लोक प्रमाण, काल से -

अनादि अनंत, भाव से - अरुपी, गुण से - चैतन्यगुण।

❖ **इक्कीसवा बोल: राशि दो.**

समान प्रकार के पदार्थ के समूह को 'राशि' कहते हैं।

1. जीव राशि,   2. अजीव राशि।

❖ **बाईसवा बोल : श्रावक के व्रत 12, उसके भंग - विकल्प 49 हैं।**

श्रावक 49 प्रकार में से किसी भी प्रकार के विकल्प से व्रत धारण कर सकता हैं।

❖ **तेईसवा बोल : साधु के पाँच महाव्रत। उसके भंग 252**

❖ **चौबीसवा बोल: प्रमाण चार हैं।**

जिस से अर्थ, पदार्थ को जान सके उसे प्रमाण कहते हैं।

1. प्रत्यक्ष,   2. अनुमान,
3. आगम   4. उपमान

❖ **पच्चीसवा बोल : चारित्र पाँच:**

चारित्र वह हैं, जो आने वाले कर्मों को रोक दे अथवा संयम रूप आचरण वह चारित्र।

1. सामायिक चारित्र,   2. छेदोपस्थापनीय चारित्र,
3. परिहार विशुद्ध चारित्र,   4. सूक्ष्म संपराय चारित्र,
5. यथाख्यात चारित्र।

❖ **छब्बीसवा बोल: नय सात :**

प्रत्येक वस्तु के अनंत गुणधर्म होते हैं। अनंत गुणधर्मों में से अन्य गुणधर्मों को गौण कर, एक गुण को जानना

1. नैगम नय,   2. संग्रह नय,   3. व्यवहार नय,
4. ऋजुसूत्र नय,   5. शब्द नय,   6. समभिरुढ नय,
7. एवंभूत नय।

❖ **सत्ताईसवा बोल : निक्षेप चार:**

किसी वस्तु को समझने का दृष्टिकोण निक्षेप हैं।

1. नाम 2. स्थापना 3. द्रव्य 4. भाव

❖ **अट्ठाईसवा बोल : समकित पाँच:**

सुदेव, सुगुरु और उनके द्वारा प्ररूपित नौ तत्वों आदि सुधर्म के प्रति यथार्थ श्रद्धा - आस्था रखना समकित हैं।

1. उपशम समकित, 2. क्षयोपशम समकित,
3. क्षायिक समकित, 4. सास्वादान समकित,
5. वेदक समकित।

❖ **उनतीसवा बोल : रस नौ**

जिसमें हम एकमेक हो जाते हैं, उसे 'रस' कहते हैं।

1. श्रृंगार रस, 2. वीर रस, 3. करुण रस,
4. हास्य रस, 5. रौद्र रस, 6. भयानक रस,
7. अद्भूत रस, 8. बिभत्स रस, 9. शांत रस।

❖ **तीसवां बोल : भावना बार**

आत्मा के प्रशस्त, वैराग्य प्रेरक भावों को 'भावना' कहते हैं।

1. अनित्य भावना, 2. अशरण भावना, 3. संसार भावना,
4. एकत्व भावना, 5. अन्यत्व भावना, 6. अशुचि भावना,
7. आश्रव भावना, 8. संवर भावना, 9. निर्जरा भावना,
10. लोकस्वरूप भावना, 11. बोधि भावना, 12. धर्म भावना।

❖ **इकतीसवा बोल : अनुयोग चार:**

वस्तु के विशेष स्पष्टिकरण को 'अनुयोग' कहा जाता हैं।

1. द्रव्यानुयोग, 2. गणितानुयोग,
3. चरणकरणानुयोग, 4. धर्मकथानुयोग।

❖ बत्तीसवा बोल : तत्व तीन:

1. देव, 2. गुरु 3. धर्म

❖ तैंतीसवा बोल : समवाय पांच:

जिन के समन्वय से कार्य होते हैं, वह समवाय है।

1. काल, 2. स्वभाव, 3. नियति,
4. कर्म (पूर्वकृत), 5. पुरुषार्थ

❖ चौतीसवा बोल : पाखंडी, विधर्मियों के 363 भेद:

मोक्षमार्ग को वीतराग वाणी से कम, उससे अधिक तथा उसके विपरीत माने वे 'पाखंडी' कहलाते हैं।

1. क्रियावादि के 180, 2. अक्रियावादि के 84,
3. विनयवादी के 32, 4. अज्ञानवादी के 67.

❖ पैंतीसवा बोल : श्रावक के 21 गुण:

श्रावक पर्याय की प्राप्ति के लिए जो जो विशिष्ट आचरण प्रकट करना पडे या श्रावकों में सहजता से प्रकट हो जाए, उसे गुण कहते हैं।

1. अक्षुद्र, 2. यशवंत, 3. सौम्य स्वभाव वाला,
4. लोकप्रिय, 5. अक्रूर, 6. पापभीरू,
7. श्रद्धा रखनेवाला, 8. चतुर, 9. लज्जावान,
10. दयावंत, 11. माध्यस्थ दृष्टि, 12. गंभीर,
13. गुणानुरागी, 14. धर्मोपदेशक, 15. न्यायपक्षी,
16. शुद्ध विचारक, 17. मर्यादायुक्त व्यवहारी,
18. विनम्र, 19. कृतज्ञ,
20. परोपकारी, 21. सत्कार्य में सावधान

छह काय

छह काय – 1. पृथ्वीकाय, 2. अपकाय, 3. तेउकाय,
4. वाउकाय, 5. वनस्पतिकाय, 6. त्रसकाय

काय याने शरीर या समूह। एक ही प्रकार के जीवों के समूह को 'काय' कहते हैं।

1.पृथ्वीकाय

पृथ्वीकाय के दो भेद :

1. सूक्ष्म, 2. बादर

इन दोनों के 1. अपर्याप्त और 2. पर्याप्त

कुल मिलाकर चार भेद हैं।

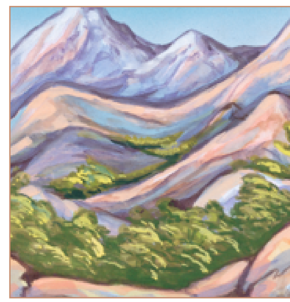

सूक्ष्म जीव संपूर्ण विश्व में व्याप्त हैं। जो मारने से मरते नहीं, आग में जलते नहीं, पानी में डूबते नहीं, आँख से दिखाई नहीं देते, दो हिस्सों में बंटते नहीं, सिर्फ ज्ञानी ही जानते और देखते हैं, उसे 'सूक्ष्म' कहते हैं।

बादर जीव लोक के देश (कुछ) भागों में हैं। जो मारने से मरे, आग में जले, पानी में डूब जाए, नजरों से देखें जा सके और न भी दिखें , दो भागों में विभाजित हो सकते हैं, उसे 'बादर' कहा जाता हैं।

बादर पृथ्वी के नाम: 1. काली, पीली, लाल आदि रंगीन मिट्टी, 2. नमक, 3. चाँदी, सोने की खान, 4. अबरख, लोहे, हीरे की खान, 5. पारा, मरक्युरी, 6. पत्थर, चट्टान, 7. गेरू, चंदन, स्फटिक आदि रत्न आदि अनेक प्रकार की पृथ्वीकाय हैं। श्री भगवंत ने कहा हैं कि पृथ्वीकाय के एक टुकड़े में असंख्य जीव हैं। असत् कल्पना से यदि ज्वार के बराबर भी पृथ्वीकाय ले ले और उसमें से एकेक जीव निकलकर कबूतर जितनी काया बना ले, तो एक लाख योजन जितना जंबूद्विप हैं, उसमें वे जीव न समाए, उतने जीव उस में होते हैं। एक पर्याप्त के सामने असंख्य अपर्याप्त जीव हैं। पृथ्वीकाय (पृथ्वीकाय के एक जीव का) का जीवन काल अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट 22,000 वर्ष हैं। पृथ्वीकाय के कुल 12 लाख करोड़ हैं (कुल का अर्थ हैं कि उन उन योनि में उतने उतने जीव उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए पृथ्वीकाय में सात लाख योनियाँ हैं। उसमें बारह लाख करोड़ प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं।) उनका संस्थान -

आकार मसुर की दाल जैसा हैं, रंग पीला हैं।

2. अपकाय

अपकाय (जल) के दो भेद- सूक्ष्म और बादर।

इन दोनों के अपर्याप्त और पर्याप्त - कुल चार भेद हैं।

बादर जल के नाम: 1. वर्षा और ओले का पानी, 2. धुंध और कोहरे का पानी, 3. कुआँ, नदी और झील का पानी, 4. समुद्र और झरने का पानी, 5. खारा और खट्टा पानी, 6. मीठा और फीक्का पानी आदि कई प्रकार के पानी हैं। श्री भगवंत ने कहा हैं कि - पानी के एक एक बिंदु में असंख्य जीव हैं। यदि उसमें से एक एक जीव निकलकर राई के दाने के बराबर काया बनाए तो एक लाख योजन का जंबूद्वीप हैं, उसमें वे जीव समाए नहीं। एक पर्याप्त के सामने असंख्य अपर्याप्त हैं। इनका जीवन काल जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट 7,000 वर्ष हैं। इनके कुल 7 लाख करोड़ हैं। इनका संस्थान (आकार) पानी के बुलबुले की तरह होता हैं। वर्ण लाल हैं।

3. तेउकाय

तेउकाय (अग्नि) के दो भेद - सूक्ष्म और बादर।

इन दोनों के अपर्याप्त और पर्याप्त कुल - चार भेद हैं। बादर तेउकाय केवल ढाई द्वीपों में हैं।

बादर अग्नि के नाम : 1. चूल्हे और भट्ठी की आग, 2. चकमक पत्थर और बिजली की आग, 3. दीपक की आग, 4. दावानल की आग... इसके अलावा आग कई प्रकार की होती हैं। श्री भगवंत ने कहा हैं कि आग की एक चिनगारी में असंख्य जीव होते हैं। यदि उसमें से एक-एक जीव निकलकर खसखस के दाने जितना शरीर बनाए तो एक लाख योजन का जंबूद्वीप हैं उसमें वे जीव समाए नहीं। एक पर्याप्त के सामने असंख्य अपर्याप्ता हैं। इनका जीवन काल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन अहोरात्रि का होता हैं। इनके कुल 3 लाख करोड हैं। इसका संस्थान (आकार) सुई की

गड्डी जैसा हैं। रंग सफ़ेद हैं।

4. वाउकाय

वाउकाय के दो भेद- सूक्ष्म और बादर।

इन दोनों के अपर्याप्त और पर्याप्त - कुल चार भेद हैं।

बादर वायु के नाम : 1. पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा के वायु। 2. उंची निची और तिरछी दिशा के वायु, 3. आँधी, बवंडर और चक्रवात वायु, 4. घन (मोटा) और तन (पतला) वायु, 5. शुद्ध वायु। इसके अलावा वायुकाय के अनेक भेद हैं। श्री भगवंत ने कहा हैं कि उस वायु के एक बार के फरकने में असंख्य जीव होते हैं। यदि उनमें से एक एक जीव बाहर आकर बरगद के बीज के जितनी काया करें, तो एक लाख योजन का जंबूद्वीप हैं, उसमें वे जीव नहीं समाए जाए। एक पर्याप्त के सामने असंख्यात अपर्याप्त हैं।

इनका जीवन काल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 3000 वर्ष का हैं। इनके कुल 7 लाख करोड़ हैं। इनका संस्थान- आकार ध्वजा-पताका के जैसा हैं। रंग नीला हैं।

5. वनस्पतिकाय

वनस्पतिकाय के दो प्रकार होते है, सूक्ष्म और बादर। इसमें बादर वनस्पति के दो भेद होते हैं। प्रत्येक और साधारण। सूक्ष्म, प्रत्येक और साधारण इन तीनों के अपर्याप्त और पर्याप्त मिलके वनस्पतिकाय के 6 भेद होते हैं। सूक्ष्म वनस्पति के जीव साधारण होते हैं।

जिस वनस्पति के शरीर में एक ही जीव होता हैं, उसे प्रत्येक 'वनस्पति' कहा जाता हैं।

प्रत्येक वनस्पति के नाम: 1. आंवला, आम, अमरूद, सीताफल, अनार आदि फल 2. बैंगन, भींडी आदि सब्जियाँ, 3. गुलाब, जुई, केतकी आदि फूल, 4. अशोकलता, पद्मलता आदि लताएँ, 5. दूधी, तुरिया, करैला आदि की बेलें 6. गन्ना, नेतर, बांस आदि गांठदार पेड़, 7. नारियल, केला आदि ऊँचे गोल पेड़, 8. मेथी, तांदलजो, सुवा आदि भाजियाँ, 9. गेहूँ, ज्वार, बाजरी आदि अनाज और मूँग, मठ, चना आदि, 10. शिंगोडा, कमल आदि जलीय वृक्ष, 11. मशरूम आदि अनेक प्रकार की प्रत्येक

वनस्पति हैं।

साधारण का अर्थ हैं, जिस वनस्पति के एक शरीर में अनंत जीव हो।

साधारण वनस्पति के नाम:

1. प्याज, 2. लहसुन, 3. आलू, 4. अदरक, 5. हरी हल्दी, 6. गाजर, 7. मूली, 8. शकरकंद, 9. सूरन 10. बीट आदि अनेक प्रकार की साधारण वनस्पति हैं। कंदमूल के एक टुकडे में श्री भगवंत ने अनंत जीव कहे हैं।

प्रत्येक वनस्पति का जीवनकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट 10,000 वर्ष होता हैं। साधारण वनस्पति का जीवन काल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त हैं। वनस्पति काय के कुल 28 लाख करोड़ हैं। इनके आकार विभिन्न प्रकार के होते हैं। वर्ण भिन्न भिन्न होता हैं।

पृथ्वीकाय आदि पाँचो स्थावर जीव एकेन्द्रिय हैं। उन जीवों को सिर्फ स्पर्शेन्द्रिय ही होती हैं।

त्रसकाय

इनके चार भेद हैं: 1. बेइन्द्रिय, 2. तेइन्द्रिय, 3. चौरेन्द्रिय, 4. पंचेन्द्रिय।

1. बेइन्द्रिय : इनके दो भेद हैं- अपर्याप्त और पर्याप्त।

जिन को स्पर्शेन्द्रिय (शरीर) और रसनेन्द्रिय (जीभ) का ज्ञान हो उसे बेइन्द्रिय कहते हैं।

उनके नाम: 1. जोंक, 2. कीड़े, 3. पोरा, 4. कृमी, 5. अलसिया, 6.शंख, 7. छीप, 8. इयल (इल्ली) आदि कई प्रकार के बेइन्द्रिय जीव हैं। इनका जीवन काल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट बारह वर्ष। इनके कुल सात लाख करोड हैं।

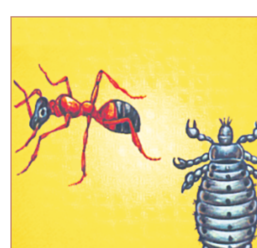

2. तेइन्द्रिय: इनके दो भेद हैं- अपर्याप्त और पर्याप्त।

जिनके पास स्पर्शेन्द्रिय (शरीर), रसनेन्द्रिय (जीभ) एवं घ्राणेन्द्रिय (नाक) हैं, उन्हें तेइन्द्रिय कहा जाता हैं।

उनके नाम : 1. जू 2. लीख, 3. मांकड, 4. चींटी, 5. कंथवा, 6. उधई 7. कानखजूरा, 8. मंकोड़ा, 9.चींटियाँ आदि.... अनेक

प्रकार के तेइन्द्रिय जीव होते हैं।

इनका जीवनकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 49 दिनों का हैं। इनके कुल आठ लाख करोड हैं।

3. चौरेन्द्रिय : इनके दो भेद हैं- अपर्याप्त और पर्याप्त।

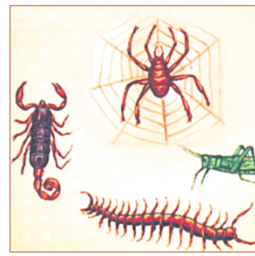

जिनके पास स्पर्शेन्द्रिय (शरीर), रसनेन्द्रिय (जीभ), घ्राणेन्द्रिय (नाक) और चक्षुरिन्द्रिय (आँख) हैं उन्हें चौरेन्द्रिय कहा जाता हैं।

उनके नाम:1. मक्खी, 2. डांस, 3. मच्छर, 4. भौंरा, 5. टिड्डी, 6. मकड़ी, 7. बिच्छू, आदि... चौरेन्द्रिय जीव कई प्रकार के चौरेन्द्रिय जीव होते हैं। उनका जीवन काल जधन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट छह महीने का हैं। इनके कुल नौ लाख करोड हैं।

4. पंचेन्द्रिय : इनके चार भेद हैं-

1. नारकी, 2. तिर्यंच पंचेन्द्रिय,

3. मनुष्य, 4. देव

जिनके पास स्पर्शेन्द्रिय (शरीर), रसनेन्द्रिय (जीभ), घ्राणेन्द्रिय (नाक), चक्षुरिन्द्रिय (आँख), श्रोतेन्द्रिय (कान) हैं, उन्हें पंचेंद्रिय कहा जाता हैं।

नारकी : नारकी के सात भेद हैं।

सात नरकों के नाम -

1. धमा, 2. वंशा, 3. शिला, 4. अंजना,

5. रिठ्ठा, 6. मघा, 7. माघवती।

सात नरकों के गोत्र ...

1. रत्नप्रभा, 2. शर्कराप्रभा, 3. वालुकाप्रभा, 4. पंकप्रभा,

5. धूमप्रभा, 6. तमःप्रभा, 7. तम तमःप्रभा।

सात नरकों के अपर्याप्त और पर्याप्त कुल मिलाकर 14 प्रकार हैं। नारकी की स्थिति - जीवनकाल जघन्य 10,000 वर्ष, उत्कृष्ट 33 सागरोपम। इनके कुल

पच्चीस लाख करोड़ हैं।

तिर्यंच: तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 20 भेद....

1. जलचर, 2. स्थलचर, 3. उरपरिसर्प
4. भुजपरिसर्प, 5. खेचर।

इन पाँचों के दो दो भेद हैं।

1. गर्भज, 2. संमूर्च्छिम= कुल 10 भेद। इसमें 10 अपर्याप्त और 10 पर्याप्त = कुल 20 भेद।

1. जलचर : जल में गति करने वाले को जलचर कहते हैं। मगरमच्छ, कछुए, मेंढक आदि...

2. स्थलचर : जमीन पर चलने वाले को स्थलचर कहते हैं। घोड़े, गधे, गाय, भैंस, हाथी, बाघ, शेर आदि ...

3. उरपरिसर्प : पेट के बल चले, उसे उरपरिसर्प कहते हैं। साँप, अजगर आदि ...

4. भुजपरिसर्प : जो भुजाओं पर चलता हैं, उसे भुजपरिसर्प कहते हैं। चूहे, गिलहरी, छिपकली आदि ...

5. खेचर : आकाश में उड़ने वाले को खेचर कहते हैं। कोयल, मोर, कबूतर, पोपट, चिडियाँ आदि ..

गर्भज तिर्यंच की स्थिति - जीवन काल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम का होता हैं। संमूर्च्छिम तिर्यंच की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पूर्व क्रोड वर्ष की। तिर्यंच के साढ़े तिरेपन लाख करोड कुल हैं।

3. मनुष्य : इनके दो भेद हैं.

1. गर्भज 2. संमूर्च्छिम।

गर्भज मनुष्य के 202 भेद हैं।

1. 15 कर्मभूमि के मनुष्य
2. 30 अकर्मभूमि के मनुष्य
3. 56 अंतरद्वीप के मनुष्य

ऐसे 101 भेद। इसके अपर्याप्त और पर्याप्त को मिलाकर कुल 202 भेद हुए।

संमूर्च्छिम मनुष्य के 101 भेद हैं।

उपरोक्त 101 मनुष्य के क्षेत्र में मनुष्य की 14 प्रकार की अशुचियों में से उत्पन्न

होने वाले 101 संमूर्च्छिम मनुष्य के अपर्याप्ता।

सब मिलाकर कुल 303 भेद हैं।

गर्भज मनुष्य की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम। संमूर्च्छिम मनुष्य की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त। अपर्याप्त अवस्था में ही संमूर्च्छिम मनुष्य की मृत्यु हो जाती हैं।

मनुष्यों के कुल बारह लाख करोड़ हैं।

देव: देव के चार भेद-

1. भवनपति, 2. वाणव्यंतर,
3. ज्योतिषी, 4. वैमानिक।

उसमें भवनपति के 25, वाणव्यंतर के 26, ज्योतिषी के 10, वैमानिक के 38... अर्थात् 99 भेद होते हैं। उन 99 के अपर्याप्ता और पर्याप्ता = देवता के 198 भेद।

देव की अवस्था जघन्य 10,000 वर्ष, उत्कृष्ट 33 सागरोपम हैं।

इनके कुल 26 लाख करोड़ हैं।

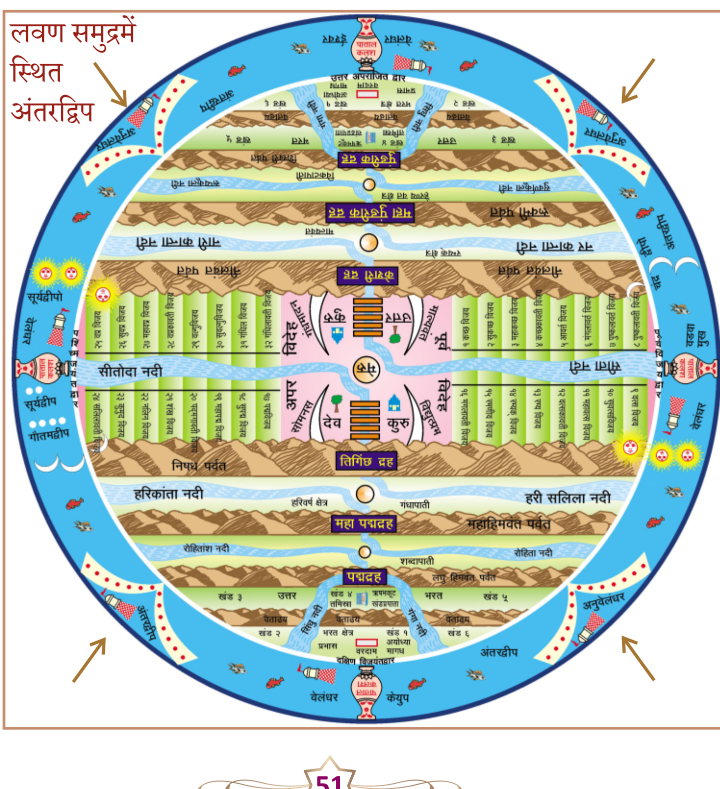

छह काय जीवों की दया

जैन जीवनशैली अहिंसा को प्राधान्य देती हैं। श्रावक का जीवन जयणा (जीवों के प्रति दया भाव) पूर्वक का होता हैं। श्रावक जीवदया प्रेमी होते हैं।

श्रावक सबसे पहला विचार जीवदया और जयणा का करते हैं।

आइए सोचे कि हम अपने दैनिक जीवन में छह काय जीवों के प्रति कैसे दयालु हो सकते हैं।

छह काय में से पहले पांच को केवल एक ही इन्द्रिय होती हैं...स्पर्शेन्द्रिय।

- **पृथ्वीकाय के जीवों के प्रति दया भाव...**
- जमीन खोदनी नहीं।
- खोदी हुई जमीन पर चलना नहीं।
- सोने, चाँदी, हीरे, जवाहरात से बने आभूषण पहनने नहीं।
- कच्चे नमक का प्रयोग करना नहीं...आदि

- **अपकाय जीवों के प्रति दया भाव...**
- पानी की खपत से ज्यादा बर्बादी हो रही हैं, इसलिए हमें उस दिशा में ध्यान देना चाहिए।
- जितना पानी पीना हैं, उतना ही पानी लेना।
- ब्रश करते समय, शेविंग करते समय, हाथ धोते समय नल चालू न रखें।
- बेसिन के पास मग / ग्लास रख सकते हैं। उसमें पानी भर कर उपयोग करें।
- कम से कम पानी से स्नान करें। अष्टमी पक्खी के दिनों में स्नान का त्याग करें, सप्ताह में 3/4 दिन साबुन का त्याग करें, शॉवर, टब स्नान न करें।
- घर के नौकरों को कम से कम पानी में काम करने के लिए प्रेरित करें। इसकी ट्रेनिंग दे।
- जब मेहमान आए तो जग/बोतल और खाली ग्लास ट्रे में लें और आवश्यकतानुसार पानी दे।

• यदि नल लीक हो रहा हैं तो उसे तुरंत ठीक करवाएं।

• ध्यान रखें कि पानी की टंकी ओवरफ्लो न हो।

• होली में रेन डांस, फुग्गा, पिचकारी आदि से न खेलें। वोटर गेम न खेलें।

• बारिश में, स्विमिंग पूल, झरने, समुद्र, नदी में न नहाएं। नौका विहार न करें।

• रसोई में पानी से भरा बर्तन रखें, उसका उपयोग करें। जितना संभव हो उतने पानी का पुन: उपयोग करें। आदि.....

• तेउकाय (अग्नि के) के जीवों के प्रति दया भाव ...

• रसोई में गैस की खपत लगातार होती रहती हैं। गैस को बार बार चालू-बंध न करें। अगर आप स्वंय को खाना खाना हैं, तो खाना गर्म न करें।

• दूध, सब्जि या फ्रिज से निकली कोई भी चीज सीधे गैस पर न रखें। पहले कमरे के तापमान पर आने के बाद उपयोग करें।

• ध्यान रखें कि पानी, दूध आदि ऐसे ही उबलते न रहें।

• मोमबत्तियाँ, दिये न जलाएँ, पटाखे न फोड़ें। होली न जलाएं. बॉन-फायर आदि में भाग न लें। आदि.....

• वायुकाय के जीवों के प्रति दया भाव...

• खुल्ले मुँह बोलना, ताली बजाना, झुला झुलना, कपड़ों को जोर जोर से झटकना आदि से वायुकाय के जीवों को पीडा होती हैं, इसलिए ध्यान रखें।

• पंखे निरंतर उपयोग में रहते हैं। इसे कम करने का प्रयास करें।

• ए. सी. से गर्म हवा बाहर फेंके जाने के कारण वायुकाय के जीवों की विराधना होती हैं इसलिए इसके प्रयोग से बचें। आदि....

• वनस्पतिकाय के जीवों के प्रति दया भाव.....

• घास पर चलना नहीं।

• घास पर पार्टी, रास गरबा, खेल आदि का आयोजन न करें। साथ ही ऐसे खेल में भाग न लें।

• स्वयं के श्रृंगार के लिए, घर या कार्यालय की सजावट में फुल-पत्ते का उपयोग न करें।

• पेड़ ना काटे।

• यदि सड़क पर फुल-पत्ते पड़े हो तो उन पर न चलें।

• कच्ची सब्जियाँ, सलाद न खाए।

• पर्व-तिथि को हरि सब्जि का त्याग करें। सब्जियों पर चप्पू ऐसे ही ना रखें। आदि....

• त्रसकाय के जीवों के प्रति दया भाव....

• जो जीव हलन चलन कर सकते हैं, उन्हें त्रसकाय कहा जाता हैं। दो इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय तक के सभी जीव त्रसकाय हैं। छोटे छोटे जीवजंतु, पशु-पक्षी, मनुष्य सभी त्रसकाय में आते हैं। हमें अपने दैनिक जीवन में इन जीवों की रक्षा करनी हैं, दया भाव रखना हैं। जानिए कैसे...

• सदैव नीचे और आजुबाजु देख कर चलना, उठना, बैठना।

• चीजें लेते - रखते समय देख कर रखना। छोटे छोटे जीवजंतु की रक्षा करना।

• गैस चालू करने से पहले पौंज कर ध्यान से जांच लें और फिर गैस चालू करें।

• सुबह सबसे पहले पूरे घर और बाथरूम में झाड़ू निकाले।

• मकड़ी के जाले न हो इसलिए हर दो दिन में हर जगह झाडू को घुमाएँ।

• घर में तिलचट्टे, छिपकली, मकड़ी, चींटियाँ, मच्छरों, दिमकों आदि के प्रजनन और हिंसा को रोकने के लिए साफ-सफाई रखें।

• पेस्ट कंट्रोल या जहरीली दवा का प्रयोग न करें।

• अनाज, आदि में इल्लियां न लगें इसका ध्यान रखें। ठीक से साफ करके रखें।

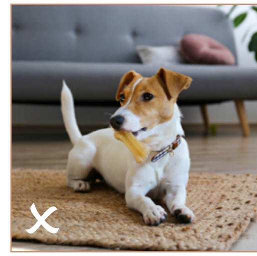

• घर में तोता, कुत्ता, बिल्ली न पालें, मछली, कछुए आदि न रखें।

• गर्भपात करे नहीं, गर्भपात करावे नहीं।

• वाहन चलाते समय सावधान रहें कि कुत्ते, बिल्ली या किसी व्यक्ति से न टकराएँ। दुर्घटना न हो इसका ध्यान रखें।

• ध्यान रखें कि सब्जियों में इल्लियां आदि कट न जाए।

• इस बात का ध्यान रखें कि खाने की चीजों में फंगस ना हो जाए।

• रेशम, मोती के आभूषण, चमड़े की वस्तुओं का प्रयोग न करें। जिनमें हिंसा शामिल हो ऐसे सौंदर्य प्रसाधनों या अन्य पदार्थों का उपयोग न करें। आदि.....

इस प्रकार हम छ काय के जीवों की दया का पालन कर अनंत पाप कर्मों के बोझ से बच सकते हैं। साथ ही हम जीवदया के भाव से शुभ पुण्य कर्म का बंध कर सकते हैं।

जैन दर्शन सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर पर विचार करता हैं। वह इस बात का ध्यान रखता हैं कि छोटे से छोटे जीव को कष्ट न हो, उसकी जान न जाए।

वैज्ञानिक लंबे समय तक शोध के बाद इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि अगर एक छोटी सी तितली अपने पंख फड़फड़ाती हैं तो उसका कंपन पूरी दुनिया तक पहुंचता हैं।

इसे नाम दिया गया है- 'बटरफ्लाई इफेक्ट'।

सूक्ष्म जीवों का हलन चलन भी प्रकृति को प्रभावित करता हैं तो मानव द्वारा होने वाली जीव हिंसा प्रकृति को कितना प्रभावित करेगी!

इसीलिए हमारे भगवान महावीर ने यह सब समझाया हैं, जीवदया से, जीवरक्षा से...स्वरक्षा, सर्वरक्षा और विश्वरक्षा होती हैं। विश्व का संतुलन बनाये रखने में जीवदया का महत्वपूर्ण योगदान हैं।

शुभ होवे इस सकल विश्व का

खंड - 4

धर्म और विज्ञान

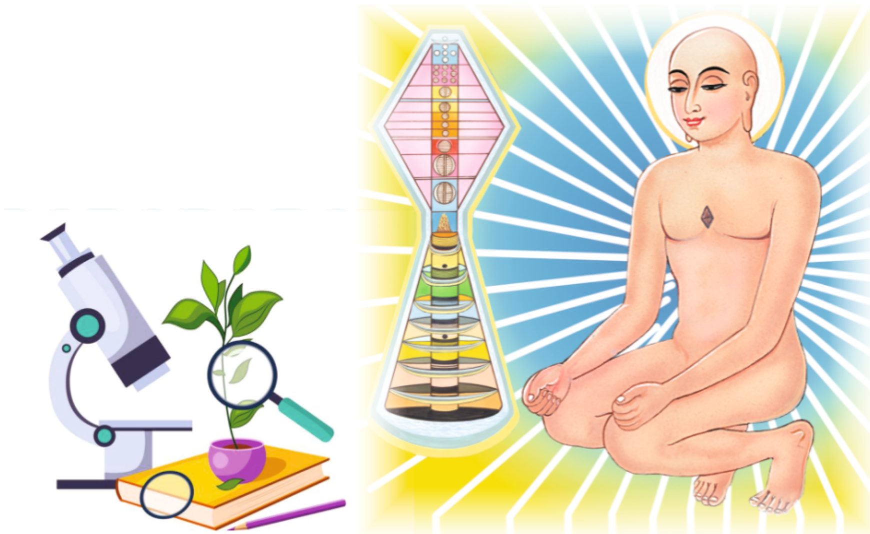

भगवान महावीर ने 2600 वर्ष पहले केवलज्ञान के माध्यम से सजीव और निर्जीव सभी वस्तुओं के भावों को जाना और उपदेश के माध्यम से उन भावों को प्रकट किया।

भगवान ने कहा हैं कि, सभी जीव चैतन्य गुणों की दृष्टि से, शक्ति की दृष्टि से एक समान हैं, लेकिन सांसारिक जीवों में उनके कर्म की दृष्टि से भिन्नताएँ हैं। कुछ जीव हलन चलन कर सकते हैं, कुछ नहीं कर सकते। कुछ प्राणियों में स्पर्श की केवल एक ही इन्द्रिय होती हैं यानी उनके पास केवल शरीर होता हैं, उनके पास आँख, कान, नाक या जीभ आदि नहीं होते हैं। उन जीवों को एकेन्द्रिय या स्थावर जीव कहा जाता हैं। कुछ जीवों में दो, तीन, चार या पाँच इन्द्रियाँ होती हैं।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव स्थावर हैं। उन जीवों का जीवत्व उनके किसी भी कार्य से प्रकट नहीं होता।

चींटियाँ, कंथवा आदि भले ही छोटे जीव हैं, लेकिन उनकी गतिविधियों से हम उनमें जीव तत्व का स्वीकार कर सकते हैं, लेकिन पृथ्वी, पानी आदि में जीव तत्व का स्वीकार करना, यह भगवान महावीर का केवलज्ञान हैं और हमें प्रभु के ज्ञान पर पूर्ण विश्वास हैं।

अब संपूर्ण विश्व इस बात को तो स्वीकारता हैं कि वनस्पति में जीव हैं। लेकिन वे अभी भी यह मानने को तैयार नहीं हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु में जीव हैं।

श्री आचारांग सूत्र अध्याय - 1 में भगवान ने छह काय में जीव हैं यह सिद्ध किया हैं। - श्री दशवैकालिक सूत्र अध्याय - 4 में भी छह काय जीवों की सिद्धि हैं।

अब रहस्य उजागर हुए हैं, जो भगवान के वचनों की सत्यता को सिद्ध करते हैं। आइए आज देखें कि पृथ्वी में जीवत्व की सिद्धि के लिए धर्म और विज्ञान क्या कहते है।

पृथ्वी में जीवत्व की सिद्धि :-

धर्म कहता है... जवार के एक दाने जितनी पृथ्वी में असंख्यात जीव हैं। वह प्रत्येक जीव हमारे जैसा ही हैं। वे जीव भी सुख और अनुकूलता की चाहत रखते हैं। दर्द से दूर होने की चाहत रखते हैं।

उनकी व्यथा को विद्वानों ने एक दृष्टान्त के माध्यम से वर्णित किया हैं। यदि कोई व्यक्ति जन्म से अँधा, गूंगा, बहरा आदि सभी प्रकार से विकलांग हैं, यदि हम उस व्यक्ति का छेदन भेदन करें तो उसे दर्द होता हैं, लेकिन चूंकि उसके पास अपना दर्द व्यक्त करने का साधन नहीं हैं, इसलिए वह अपना दर्द व्यक्त नहीं कर पाता।

इसी प्रकार यदि हम पृथ्वीकाय तथा अन्य एकेन्द्रिय जीव का विच्छेदन करें तो, उनमें भी हमारे जैसा ही जीव हैं, अतः वे जीव भी हमारे जैसी संवेदनाओं का अवश्य अनुभव करेंगे।

लेकिन चूँकि उसके पास आँख, कान, नाक या जीभ जैसी कोई इन्द्रियाँ नहीं हैं, इसलिए वे जीव अपनी पीड़ा प्रकट नहीं कर सकते।

विज्ञान :- आज के वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रयोगों द्वारा यह स्थापित कर दिया हैं कि पृथ्वी में जीव हैं।

कुछ पर्वत स्वचलित रूप से ऊंचाई में बढ़ते और घटते हैं।

जब किसी खेत में एक वर्ष तक अनाज बोया जाता हैं, तो पृथ्वी का रस स्वतः ही समाप्त हो जाता हैं। उसके बाद यदि किसान थोडे समय तक खेत में बुआई न करें और खेत खाली पड़ा रहे तो पृथ्वी के जीव स्वतः ही आहार प्राप्त कर लेते हैं और खेत फिर से उपजाऊ अर्थात् बोने लायक हो जाता हैं। इस प्रक्रिया से पृथ्वी में जीवत्व हैं, यह सिद्ध होता हैं।

रोमानिया के कोस्टेस्टी गाँव में एक तरह के पत्थर मिले हैं। वे छोटे से बड़े होते हैं। वे पत्थर अन्य पत्थरों को जन्म दे सकते हैं। इ. 2004 में उन पत्थरों को एक संग्रहालय में रखा गया था। कई वैज्ञानिकों के शोध का विषय बन गया था। वैज्ञानिक उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

जब उन पत्थरों का पानी या बारिश के साथ संयोग होता हैं, तो उन पत्थरों पर मशरूम की तरह छोटे छोटे पत्थर फूट पड़ते हैं, वे छोटे-छोटे पत्थर एक सेंटीमीटर से बडे होते हुए एकाद मीटर तक बड़े हो जाते हैं और उनका वजन एक टन तक भी हो जाता हैं।

जब उन पत्थरों को तोड़ा जाता हैं, उनके दो भाग होते हैं तब उसमें वनस्पति कि तरह एज-रिंग्स-लाइफलाइन दिखाई देती हैं, जैसा एज-रिंग्स-लाइफलाइन को देखकर पेड़ों की उम्र का पता लगाया जा सकता हैं। इसी तरह एज-रिंग्स को देखकर, पत्थर की जीवन रेखा देखकर उनकी उम्र भी जानी जा सकती हैं।

इस प्रकार वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया हैं कि पृथ्वी में जीव हैं।

उपरोक्त बातें परमात्मा के ज्ञान के प्रति हमारी श्रद्धा को पुष्ट करता हैं। इस तरह भगवान का हर वचन भले ही हमारी समझ में आए या न आए, लेकिन वह शत-प्रतिशत सत्य हैं, ऐसा अपना विश्वास-श्रद्धा को दृढ़ बनाना ही जीवन की सफलता हैं।

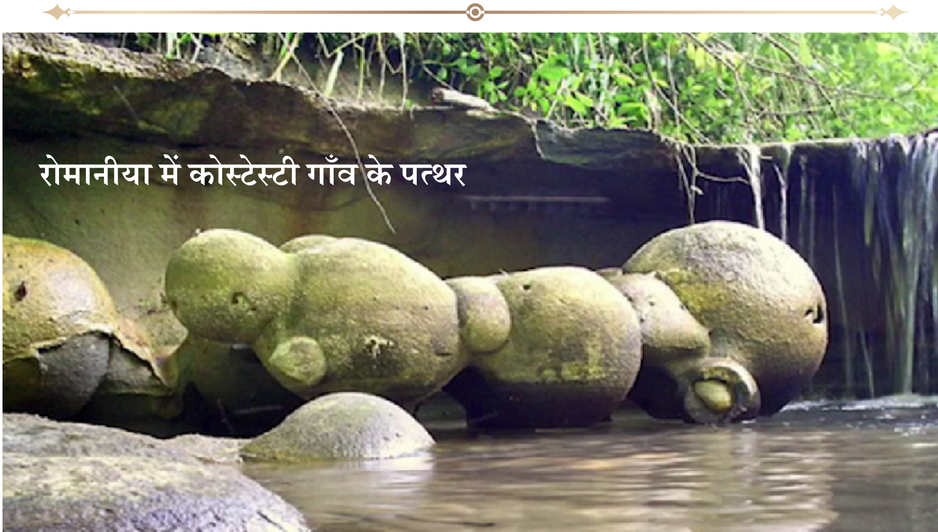
रोमानीया में कोस्टेस्टी गाँव के पत्थर

भगवान महावीर का अट्ठारहवाँ भव - त्रिपुष्ठ वासुदेव

इसी भरतक्षेत्र के पोतनपुर नगर में रिपुप्रतिशत्रु नाम के राजा और भद्रा नाम की उनकी रानी थी। उनके वहाँ चार महान स्वप्नों द्वारा सूचित, इस अवसर्पिणि काल के पहले बलदेव (बलभद्र) जिनका नाम अचल था, उनका जन्म हुआ। बाद में मृगावती नाम की कन्या का जन्म हुआ। युवावस्था को प्राप्त रूपवती कन्या पर राजा (पिता) स्वयं मोहित हो गए और उसके साथ पाणिग्रहण (विवाह) करने के बारे में सोचने लगे।

राजा ने अपनी बात पर नगरवासियों की सहमति लेने के लिए सभी बुजुर्गों को राज्यसभा में बुलाया। राजा ने सभा के सामने प्रश्न रखा, "यदि हमारे यहाँ (देश में) कोई रत्न उत्पन्न होता हैं तो उसका स्वामी कौन कहलाता हैं?" बुजुर्गों ने उत्तर दिया, "हे राजन! वह रत्न आपका कहा जाता हैं, राज्य में उत्पन्न रत्न पर राजा का अधिकार होता हैं। आप ही उसके स्वामी हो।" यह सुनकर राजा ने कहा, " स्त्रियों में सर्वोत्तम रत्न समान उत्पन्न इस राजकन्या का मैं स्वामी हूँ, इतना कहकर मृगावती को राज्यसभा में बुलाया और उसे गंधर्व विधि से स्वयंमेव पुत्री से विवाह कर लिया।

लज्जित और क्रोधित होकर, भद्रादेवी ने राजा को छोड़ दिया, अचलकुमार को लेकर दक्षिण दिशा में चलते हुए शहर छोड़ दिया। अचलकुमार ने वहाँ 'माहेश्वरी' नाम से एक नया नगर बसाया, भद्रामाता को उस नगर में रखकर अचलकुमार अपने पिता के पास आए।

राजा रिपुप्रतिशत्रु अपनी ही पुत्री रुपी प्रजा के पति बने, अत: सभी उन्हें प्रजापति नाम से बुलाने लगे।

मृगावती ने वासुदेव के जन्म को सूचित करने वाले सात महा स्वप्न देखें और विश्वभूति (महावीर) का जीव देवलोक से च्यवन पाकर मृगावती की कुक्षी में अवतरित हुआ। भरतक्षेत्र के इस अवसर्पिणी काल के प्रथम वासुदेव का यथा समय पर जन्म हुआ। उसके पृष्ठ भाग में तीन पसलियाँ थी, इसलिए उसका नाम त्रिपृष्ठ पड़ा। वे 80 धनुष ऊँचे थे। अचल और त्रिपृष्ठ में अत्याधिक स्नेह था।

विशाखनंदी का जीव अनेक भवों में परिभ्रमण कर तुंगगिरि में केसरी सिंह के रूप में उत्पन्न हुआ और शंखपुर क्षेत्र को परेशान करने लगा। उस समय अश्वग्रीव नामक प्रथम प्रतिवासुदेव ने स्वयं की मृत्यु किसके हाथ से होगी? यह निमित्तज्ञों से पूछा। उन्हों ने कहा, "जो तुम्हारे चंडवेग नामक दूत का अपमान करेगा, उसे निकाल भगाएगा और तुंगगिरि में रहे हुए सिंह को मार डालेगा, वह तुम्हें (प्रतिवासुदेव) को मारेगा।"

यह सुनकर अश्वग्रीव ने शंखपुर की रक्षा के लिए अपने अधीनस्थ राजाओं (सामंत राजाओं) को शंखपुर भेजना शुरू कर दिया। अनुक्रमानुसार, प्रजापति राजा को शंखपुर की रक्षा करने के लिए कहने के लिए चंडवेग नामक एक दूत भेजा।

प्रजापति राजा, अचल, त्रिपृष्ठ आदि राजपरिवार के साथ बैठकर संगीत और नृत्य देखने-सुनने में तल्लीन थे। उसी समय अचानक चंडवेग दूत बैठक में आ गया। उनके आने से रंग में भंग पड़ गया। प्रजापति राजा ने नृत्य और संगीत बंद कर दिया और दूत का स्वागत किया। अश्वग्रीव का संदेश सुनकर उसने दूत को भेंट सौगाद दिए और उसे विदा किया। लेकिन अचल और त्रिपृष्ठ क्रोधित हो गए। उन्हों ने दूत को रास्ते में रोका और उसकी पिटाई की। पुत्रों के इस पराक्रम को जानकर प्रजापति राजा ने पुत्रों की ओर से दूत से क्षमा माँगी।

अचल और त्रिपृष्ठ दोनों भाई तुंगगिरि के केसरीसिंह से शंखपुर की रक्षा करने के लिए निकले, प्रजापति राजा को जाने नहीं दिया। शालि की कटाई होने तक प्रत्येक राजा शालिक्षेत्र (चावल के खेत) के चारों ओर सैन्य का किला बनाकर शंखपुर की रक्षा करता था। राजा स्वयं अक्सर इस क्षेत्र का दौरा करते थे।

अधिक समय तक वहाँ न रहना पड़े इसलिए त्रिपृष्ठ ने सिंह को ही मार डालने का विचार किया। दोनों कुमार अश्वरथ पर बैठकर सिंह की गुफ़ा की ओर चल दिए। जैसे ही गुफा नजदीक आई, शोर मचाकर सिंह को बाहर निकाला गया।

"सिंह पैदल हैं, मैं रथ पर सवार हूँ, यह युद्ध बराबरी का नहीं हैं।" ऐसा सोचते हुए

त्रिपृष्ठ रथ से नीचे उतर गए। चूंकि सिंह निहत्था था, इसलिए त्रिपृष्ठ ने अपनी ढाल और तलवार आदि नीचे रख दी।

त्रिपृष्ठ द्वारा चुनौती दिए जाने पर, सिंह ने उग्रता से उनकी ओर तराप मारी। त्रिपृष्ठ ने बहादुरी से स्वयं के उपर झपट करनेवाले शेर के जबड़ों को दोनों हाथों से पकड़ लिया, जर्जरीत वस्त्र की भाँति उसे फाड़ दिया। "अहो! छोटे बच्चे जैसे इस कुमार ने मुझे मार डाला !" दो भागों में विभाजित होने पर भी सिंह क्रोध से कांपने लगा। उस समय त्रिपृष्ठ के (गौतम स्वामी की आत्मा) सारथि ने सिंह से कहा, 'हे सिंह! जैसे तुम पशुओं में सिंह हो, यह त्रिपृष्ठ मनुष्यों में सिंह हैं। तुम्हें किसी हीन मनुष्य ने नहीं मारा, इसलिए इसे अपना अपमान न समझो।" सारथि की बात सुन, अपमान के दर्द से मुक्त होकर, मृत्यु पाकर, सिंह चौथी नरक में नारकी के रूप में उत्पन्न हुआ।

दोनों कुमारों ने अपना काम पूरा किया और वहाँ से चले गए। शंखपुर के लोगों ने यह समाचार अश्वग्रीव को सुनाया। निमितज्ञ के वचन अनुसार, यह युवक मुझे मारेगा, इससे पहले कि वह मुझे मार डाले, मैं ही उसे मार देता हूँ। ऐसा सोचकर अश्वग्रीव ने एक दूत को प्रजापति राजा के पास भेजा। दूत ने प्रजापति राजा से कहा कि "आपके दोनों कुमारों को अश्वग्रीव राजा बुलाते हैं। उनकी बहादुरी से प्रसन्न होकर, अश्वग्रीव राजा कुमारों को एक अलग राज्य प्रदान करेंगे।" कुमारों को न भेजकर प्रजापति राजा स्वयं वहाँ जाने को तैयार हो गए। उस समय दूत ने कहा - "कुमारों को भेजो, अन्यथा अश्वग्रीव से युद्ध करो।" दूत की ऐसी बातें सुनकर कुमारों ने दूत को पीटकर निकाल दिया।

दोनों कुमार अपनी सेना लेकर रथावर्तगिरि आए। अश्वग्रीव भी विशाल सेना के साथ वहाँ आ पहुँचा। दोनों पक्षों में घमासान युद्ध छिड़ गया। त्रिपृष्ठ के सामने अश्वग्रीव के सभी हथियार निष्कल हो गए। अंततः अश्वग्रीव ने त्रिपृष्ठ पर चक्र छोडा। त्रिपृष्ठ ने वही चक्र लेकर अश्वग्रीव पर छोडा और अश्वग्रीव का सिर धड़ से अलग हो गया।

"अचल इस अवसर्पिणी काल के प्रथम बलदेव हैं और त्रिपृष्ठ इस अवसर्पिणी काल के प्रथम वासुदेव हैं।" इस प्रकार देवताओं ने घोषणा की। दोनों भाइयों ने वीरतापूर्वक अर्ध भरतक्षेत्र पर विजय प्राप्त की। दक्षिण भरतार्ध पर विजय प्राप्त करने के बाद वासुदेव की प्रथा का पालन करते हुए त्रिपुष्ठ ने भुजाओं से कोटिशिला उठाकर छत्र की तरह अपने सिर तक उँचा किया। तत्पश्चात दोनों भाई पोतनपुर पहुँचे। देवताओं और राजाओं ने मिलकर अर्धचक्री पद का त्रिपृष्ठ का अभिषेक किया। संसार की जो जो रत्न

जैसी वस्तुएँ और व्यक्ति थे, उन सब के त्रिपृष्ठ मालिक बने।

कुछ गायक जो गायकों में रत्नस्वरुप थे, वे भी त्रिपृष्ठ के पास आए। एक बार वे गायक संगीत के सूर फैला रहे थे। जब सोने का समय हुआ तो वासुदेव ने अपने शैयापालक को आदेश दिया, "मेरे सोने के बाद यह संगीत बंद कर देना और गायकों को जाने देना।" कुछ ही देर में त्रिपृष्ठ वासुदेव सो गए। शैय्यापालक ने मधुर वादन से मुग्ध होकर उन गायकों को विदा नहीं किया। वासुदेव सुबह उठे। गायकों को गाते और शैय्यापालक को उस में मग्न देखा। वासुदेव यह सोचकर क्रोधित हो गए कि शैय्यापालक ने संगीत मग्न होने के कारण उनकी आज्ञा की अवहेलना की हैं। शैय्यापालक के इस

अपराध की सज़ा के तौर पर शैय्यापालक के कानों में गर्म सीसा डाल दिया गया। शैय्यापालक की अपार वेदना के साथ मृत्यु हो गई। इस कृत्य से त्रिपृष्ठ ने अशातावेदनीयकर्म निकाचित किया।

84 लाख की आयु पूरी करके त्रिपृष्ठ वासुदेव चौथी नरक में गए। अचल बलदेव ने दीक्षा स्वीकार कर ली और मोक्ष में गए।

MORAL –

वैर के बंधन बहुत भयानक होते हैं। विश्वभूति एवं विशाखानंदी के भव में दोनों के बिच बंधे हुए वैर के बंधन एवं निदान के प्रभाव से विशाखानंदी जो इस भव में सिंह के रूप में था उसकी मृत्यु विश्वभूति जो इस भव में त्रिपृष्ठ वासुदेव थे, उनके हाथों से हुई। अंत में तो दोनों चौथी नरक में उत्पन्न हुए।

समझने का यही हैं कि, हमेंशा सहन कर लेना पर वैर के बंधन न बांधना। वैर की परंपरा भवोभव तक चलती हैं और भयानक दुख देती हैं। यदि थोडा सहन कर लेते हैं तो अनंत दुख से बच जाते हैं।

गजसुकुमाल मुनि

कम उम्र और कोमल शरीर के बावजूद, यदि मन की दृढ़ता और मोक्ष की ओर ले जाने वाले संवेग और निर्वेद उत्कृष्ट हैं, तो आत्मा कैसे परीक्षा को पार कर मोक्ष की अंतिम मंजिल को प्राप्त कर सकती हैं। आइए यह जानते हैं गजसुकुमाल के जीवन कवन से।

द्वारिका नगरी के राजा श्री कृष्ण वासुदेव थे। उनकी माता का नाम देवकी और पिता का नाम वसुदेव था। उनके सबसे छोटे और लाडले भाई का नाम गजसुकुमाल था। उनका शरीर हाथी के तालु के समान कोमल था, इसलिए उनका नाम 'गजसुकुमाल' रखा गया। गजसुकुमाल ने अपनी माँ के लालन पालन में धीरे धीरे यौवन प्राप्त किया।

एक बार भगवान नेमिनाथ (बाईसवें तीर्थंकर) विचरण करते हुए द्वारिका नगरी के बाहर एक उद्यान में आए। जब श्री कृष्ण वासुदेव उनके दर्शन करने के लिए नगर से बाहर जा रहे थे, तब द्वारिका नगरी के मार्ग पर एक सुंदर कन्या 'सोमा' को देखा।

सोमा का रूप और लावण्य इतना सुंदर था कि श्री कृष्ण ने उसका विवाह गजसुकुमाल से करना उचित समझा। अतः श्री कृष्ण ने सोमा के पिता सोमिल ब्राह्मण की आज्ञा लेकर सोमा को अंगरक्षकों के साथ रानियों के महल में भेज दिया।

एक बार श्री कृष्ण महाराज, रानियाँ, गजसुकुमाल और कई अन्य नगरवासी भगवान नेमनाथ के दर्शन करने और उनके पवित्र वचन सुनने आए। भगवान का उपदेश सुनकर गजसुकुमाल भावविह्वल हो गए और भगवान से बोले - "मैं अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर, वापस आकर आपके पास दीक्षा लूँगा।"

देवानुप्रियो! एक बार भगवान के पवित्र वचनों को सुना और संयम के भाव हो गए। आखिर इसकी वजह क्या है? जिन्हों ने जन्मोजन्म से ही संयम के संस्कार का अभ्यास किया है, वे ऐसा कर सकते हैं।

गजसुकुमाल को उनके माता-पिता और श्री कृष्ण ने कई तरीकों से संसार में रहने के लिए मनाया, लेकिन उनका वैराग्य दृढ था। उन्हें अब इस दुख भरे संसार में नहीं रहना

थाा बड़ों के आग्रह के कारण अगली सुबह उन्हें राजगद्दी पर बैठाया गया। उनके राजा बनने पर उनसे पूछा गया - "हे राजन! आप क्या चाहते हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ!" अपने माता-पिता की अनुमति प्राप्त करने के बाद, अपना सिर मुंडन किया और भगवान नेमिनाथ से दीक्षा स्वीकार कर ली।

एक बार दृढ़ इच्छाशक्तिवालों में संयम की भावना जागृत हो जाए तो वे किसी के भी कहने से नहीं रुकते।

उसी दिन शाम को, उन्होंने प्रभु को विनयभाव से वंदन - नमस्कार किया और पूछा, "भगवान मोक्ष में जाने का शॉर्टकट क्या हैं?" भगवान ने उन्हें बारहवीं भिक्षुपडिमा के बारे में बताया। गजसुकुमाल ने भगवान से कहा... "यदि आपकी आज्ञा हो तो मेरे ऐसे भाव हैं कि मैं महाकाल स्मशान में जाकर एक रात के लिए भिक्षुपडिमा स्वीकार कर लूँ अर्थात् पूरी रात ध्यान में खड़ा रहूँ।" भगवान ने प्रेमपूर्वक उनसे कहा, "जैसा सुख उपजे, वैसा करो... किंतु धर्म आराधना में प्रमाद मत करना।"

भगवान की आज्ञा पाकर गजसुकुमाल महाकाल स्मशान में आए। वहाँ निर्दोष भूमि को देखकर वे एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर करके एक रात्रि की महाप्रतिमा स्वीकार कर ध्यान में खड़े हो गए।

उसी दिन सोमिल ब्राह्मण हवन के लिए लकड़ी, घास आदि इकट्ठा करने के लिए द्वारिका नगरी के बाहर गया था। वह शाम को अपनी जरूरत का सामान लेकर घर लौट रहा था। उसने गजसुकुमाल मुनि को महाकाल स्मशान में ध्यान में खड़े देखा।

उन्हें देखते ही उसके हृदय में 99 लाख भव पहले का पूर्वभव का प्रतिशोध जागृत हो गया और वह मन ही मन बोला, 'अरे! ये गजसुकुमाल हैं। वह पुण्यहीन एवं दुर्लक्षणी हैं। इस साधु ने मेरी निर्दोष पुत्री सोमा को, जो युवा है, अकारण ही छोड़ दिया और खुद साधु बन गया।'

सोमिल ब्राह्मण ने सोचा, 'इससे बदला लेता हूँ।' उसने चारों ओर देखा कि कोई आ या जा तो नहीं रहा। (पाप के कार्य प्रायः एकांत में या अंधेरे में किए जाते हैं) अंधेरा होने के

कारण लोगों की कोई आवाजही नहीं थी। उसने पास के तालाब से गिली मिट्टी ली और गजसुकुमाल के सिर पर पाल बनाई। उसने स्मशान में जलती हुई एक चिता में से जले हुए लकड़ी के अंगारे एक टूटे हुए बर्तन में भर लिए और वे जलते हुए अंगारे गजसुकुमाल मुनि के सिर पर रख दिए। फिर वह इस डर से भाग गया कि कोई उसे देख न लें।

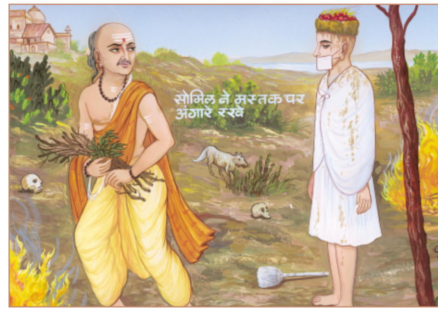

दुर्जन - पापी व्यक्ति पाप करने से नहीं डरता लेकिन ' मेरा पाप प्रकट न हो जाए' उससे डरता हैं। सज्जन आत्मा सदैव पाप से डरती हैं।

गजसुकुमाल मुनि के शरीर में असहनीय पीड़ा उत्पन्न हुई। वह पीडा अत्यंत दर्दनाक, भयानक थी। एक तो सुकोमल शरीर और बिना बालों वाला ताजा मुंडा हुआ सिर। चमडी तड तड तूटी और खोपड़ी फट गई, पीड़ा असहनीय थी। फिर भी गजसुकुमाल मुनि के मन में सोमिल ब्राह्मण के प्रति तनिक भी द्वेष नहीं हुआ और वे समभाव से कष्ट सहने लगे।

'आत्मा शाश्वत हैं और शरीर अशाश्वत हैं। क्षमा आत्मा का गुण हैं और क्रोध विभाव हैं। मैं अपने अशुभ कर्मों का फल भुगत रहा हूँ।' ऐसा चिंतन उनका चलता रहा। उनके शुभ परिणाम और शुभ अध्यवसाय से आत्मा के गुणों का घात करने वाले कर्म नष्ट हो गए और उन्हें केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति हुई। तत्पश्चात समस्त कर्मो के क्षय के कारण उन्हें तभी मोक्ष की प्राप्ति हुई।

धन्य है गजसुकुमाल को, उनके वैराग्य को, ध्यान को और उनकी क्षमा को।

MORAL –

देवानुप्रियों ! गजसुकुमार के क्षमाभाव - समताभाव अद्भुत थे। हमारे लिए ये नामुमकिन जैसा हैं। लेकिन हम थोड़ी बहुत क्षमा और समता रख सकते हैं! निमित्त को दोष दिए बिना स्वयं के ही कर्मो का उदय हैं, ऐसी समझ के साथ इसी भव से हम ऐसे संस्कार दृढ करेंगे, तो भविष्य में हम भी गजसुकुमाल जैसे क्षमावान बन पाएँगें।

सती चंदनबाला

दधिवाहन चंपापुरी नगर के राजा थे। उनकी पत्नी का नाम धारिणी और पुत्री का नाम वसुमती था। माता-पिता ने पुत्री को विद्या और कला में निपुण तथा सुसंस्कारी बनाया था।

कौशांबी नगरी का राजा शतानिक था। उनका विवाह मृगावती से हुआ था। मृगावती और धारिणी दोनों बहनें थी। किसी अज्ञात कारण ने दोनों राजाओं के बीच बदला लेने का बीज बोया और युद्ध में शतानिक ने दधिवाहन राजा को मार डाला।

शत्रु राजा के हाथों पकड़े जाने के डर से धारिणी और वसुमती वहाँ से भाग गए। लेकिन कौशांबी के एक सारथि ने उन दोनों की रक्षा की। रास्ते में धारिणी रानी का रूप देखकर उसकी नियत बिगड़ी, धारिणी ने अपने शील की रक्षा के लिए प्राण त्याग दिए। केवल बारह वर्ष की वसुमती निराश्रित हो गई।

धारिणी की अकाल मृत्यु से सारथि थोडा ढीला पड गया। उसने बाल कुमारी वसुमती को कौशांबी के बाजार में बेचने का फैसला किया। कर्म की गति तो देखो! एक समय की राजकुमारी, आज बाजार में बिक रही थी। सद्भाग्य से उसी नगर के धनावह शेठ उसी मार्ग से जा रहे थे। उन्होंने वसुमती को देखा और सोचा: 'यह लड़की किसी उच्च कुल की व्यक्ति हैं, किसी लंपट व्यक्ति के हाथ में जाने से अच्छा हैं, मेरी पत्नी मूला को किसी काम आएगी।' उन्होंने वसुमती को खरीद लिया और अपने घर ले आए।

धनावह सेठ ने घर आकर मूला सेठानी को बताया। "इसे हमारी बेटी समझो। यह बच्ची गुणी हैं। हम इसे चंदनबाला कहेंगे।" सेठानी खुश हुई और वसुमती को प्यार करने लगी।

जैसे जैसे समय बीतता गया चंदनबाला के शरीर में यौवन प्रगट होने लगा। मूला सेठानी को हुआ, "सेठ उसे बेटी की तरह रखते हैं, लेकिन अगर समय गुजरते वे उसकी युवावस्था में आकर्षित होकर उससे शादी कर लेंगे तो? मेरा जीवन तो मिट्टी हो जाएगा!" सेठानी ऐसी ही व्यर्थ और झूठी चिंताओं में उलझ गई।

एक बार जब सेठानी अपने पड़ोसी के घर गई हुई थी तब सेठ काम निपटा कर घर

आए। चंदनबाला नम्रतापूर्वक उनके चरण धोने लगी। उस समय उसकी चोटी खुल गई। सेठ ने अपनी छड़ी से उसके बाल उठाए।

संयोग से उसी समय मूला सेठानी घर में आई और उसने यह दृश्य देखा, वह और अधिक दुखी हो गई और उसका शक द्रढ हो गया कि 'अब सेठ उससे अवश्य विवाह करेंगे।' सेठानी को अब चंदना खुंचने लगी । उसके मन में ख्याल आया कि लता फैलने लगे उसके पहले उसे मूल से अलग कर देना चाहिए। इसके लिए वह सही समय का इंतजार करने लगी।

कुछ दिन बाद धनावह सेठ तीन-चार दिन के लिए बहारगाँव गए। तब मूला सेठानी ने चंदनबाला को बुलाया और कटु वचन कहें। उसका सिर मुंडवा दिया, पैरों में बेड़ियाँ डाल दी और चुपके से घर के तहखाने में बंद कर दिया।

इस तरफ चंदनबाला सोचती है, 'मेरे कर्म ही ऐसे हैं, माँ की रास्ते में ही मृत्यु हो गई। पिता का घर छूटा, पशुओं की तरह बाजार में बिकी! फिर भी सौभाग्य से मैं सेठ के हाथ आ जाने से, बच गई। बहुत अच्छा हुआ कि, आज मुझे कुछ एकांत मिल गया। अब मैं यहीं धर्म ध्यान करूंगी।' ऐसा सोचती रही पर मूला सेठानी पर द्वेष नहीं किया ।

तीन दिन बाद सेठ बाहरगाँव से घर आए। चंदनबाला नजर नहीं आई, कई जगह ढूँढने के बाद तहखाने में चंदनबाला मिली। उसे ऐसी दयनीय स्थिति में देखकर सेठ को बहुत दुख हुआ। तीन दिन बीत गए थे लेकिन चंदनबाला को न तो भोजन मिला और न ही पानी। उसका गला और शरीर क्षीण हो गया था। जैसे मौत झाँकती नजर आ रही थी। फिर भी वह नमस्कार मंत्र के जप करने में तल्लीन थी।

सेठ को पता चल गया कि 'यह सब कारस्तान मूला सेठानी का है।' सेठ ने तुरंत उसके लिए भोजन की तलाश की, लेकिन मूला सेठानी रसोई में ताला लगाकर बाहर चली गई थी। सेठ ने नौकरानी के लिए बनाए हुए उडद के बाकुले एक सूपडे में लिए और उसे खाने के लिए दिए। उसे घर की दहलीज पर बिठा कर, वे उसकी बेड़ियाँ काटने के लिए लुहार को बुलाने चले गए। ऐसी विकट परिस्थिति में भी चंदनबाला यही सोचती हैं कि 'अगर कोई संत मेरे आंगन में आए तो उसे भोजन करवाऊँ और फिर मैं पारणा करूँ।'

भगवान महावीर स्वामी उस समय कौशांबी नगर में विराजीत थे। उन्हों ने कोई विकट अभिग्रह धारण किया था। नगरवासी, भाविकों, श्रावकों एवं श्राविकाओं ने

भगवान के अभिग्रह को पूरा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, फिर भी उन्हें पता नहीं चल रहा था कि उनका अभिग्रह क्या हैं और उनका पारणा क्यों नहीं हो रहा था। राज्य के राजा, रानी और नगरवासी उनके पारणे को लेकर चिंतित रहते थे। ऐसे ही पाँच महीने और पच्चीस दिन पूरे हो गए थे। 'अगर कोई महिला दहलीज पर बैठी हो, उसका एक पैर घर की दहलीज के अंदर और दूसरा दहलीज के बाहर हो, कुंवारी राजकुमारी हो लेकिन एक दासी बना दी गई हो, उसके पैरों में बेड़ियाँ हो, सिर मुंडा हुआ हो, रो रही हो, अगर वह मुझे भिक्षा देगी तो मैं उससे पारणा करूँगा।' उनका ऐसा दुष्कर अभिग्रह था।

आज भगवान महावीर पारणे के लिए घूमते हुए संयोगवश चंदनबाला की दहलीज पहुँच गए। चंदनबाला बहुत प्रसन्न हुई और उन्हें वहोराने के लिए आगे बढ़ी, लेकिन... भगवान वहाँ से लौट आए। 'ओह, मैं कैसी अभागन हूँ? क्या आंगन में आए संत वापस जाने चाहिए?' यह सोचकर वह जोर जोर से रोने लगी। उसके रोने की आवाज सुनकर भगवान ने पीछे देखा और अपना अभिग्रह पूरा हुआ जानकर भिक्षा के लिए हाथ फैलायें। चंदनबाला ने बहुत उत्साह और भक्ति से उन्हें बाकुले वहोराए।

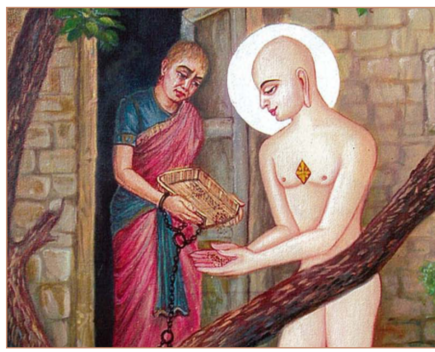

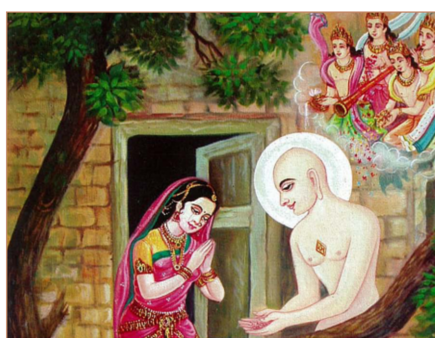

उसी समय देवताओं ने साढ़े बारह करोड़ सोनामुहर की वर्षा की। चंदनबाला की बेड़ियाँ टूट गई, आकाश में देव दुंदुभी बजने लगी। मूला सेठानी वापस आ गई। उसे अपने कृत्य पर पछतावा हुआ और उन्हों ने चंदनबाला से क्षमा मांगी। विशाल हृदय वाली चंदनबाला ने कहा, 'माँ ! यदि ऐसा न होता तो मुझे भगवान को भोजन कराने का सौभाग्य कैसे प्राप्त होता? आपने मुझ पर असीम उपकार किया हैं।" ऐसे शब्दों से चंदनबाला ने मूला सेठानी के दुख को आनंद में बदल दिया। धनवाह सेठ वापस आये तो यह दृश्य देखकर उन्हें भी बहुत खुशी हुई।

नगर के सभी लोगों को भगवान के पारणे के बारे में पता चल गया। कौशांबी के राजा शतानिक और रानी मृगावती वहाँ आये। रानी ने चंदनबाला को देखकर कहा, "अरे, यह मेरी भाँजी (बहन की बेटी) वसुमती हैं" और उसे प्यार से गले लगा लिया, धनावह सेठ की सहमति लेकर वे चंदनबाला को राजमहल में ले गये।

चंदनबाला वापस राजमहल चली गई, परंतु धनावह सेठ का उपकार नहीं भूली। इतने वैभव के बावजूद भी उनका मन सदैव धर्म में ही लगा रहता था।

समय के साथ, भगवान महावीर को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। यह जानकर चंदनबाला बहुत प्रसन्न हुई। वह भगवान के पास गयी और चरित्र धारण किया। वह भगवान की सभी साध्वीजी में पहली साध्वी और 36,000 साध्वीओं में सबसे प्रमुख साध्वी बनी। साध्वी के रूप में आदर्श जीवन जी कर उन्हों ने सभी कर्मो को क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया।

MORAL –

देवानुप्रियों ! कर्म सिद्धांत की श्रद्धा दृढत्तम बनाए, ऐसा चंदनबाला का जीवन चरित्र याने आत्म आलय को सजानेवाला समतारूप समृद्ध भव्य मोतियों का हार। कर्म शत्रुओंको आत्म आवास में प्रवेश न मिले, ऐसी सुदृढ दिवाल। हमें यही सीख जीवन में उतारनी हैं कि समताभाव, सहनशीलता सब कर्मो का क्षय करवाकर, आत्म वैभव को प्राप्त करानेवाले अद्भूत गुण हैं। आत्म हित की इच्छा रखनेवाले हर किसी को ऐसे गुणों को जीवन में उतारने का प्रयत्न करना ही चाहिए।

स्वयं के आत्मा का ही
दमन करना चाहिए क्योंकि आत्मा ही दुर्दम्य हैं।
आत्मा का दमन करनेवाला अर्थात् कषायात्मा का
दमन करनेवाला ही इस लोक और परलोक में सुखी होता हैं।

खंड - 6

काव्य धारा विभाग

रत्नाकर पच्चीसी

आवेल दृष्टिमार्ग मां, मूकी महावीर आपने,
में मूढधी ए हृदयमां, ध्याया मदन ना चापने ।
नेत्रबाणों ने पयोधर, नाभि ने सुंदर कटि,
शणगार सुंदरीओं तणा, छटकेल थई जोया अति .... ||13||

मृगनयनी सम नारी तणां, मुखचन्द्र निरखवावती,
मुज मन विषे जे रंग लाग्यो, अल्प पण गूढो अति ।
ते श्रुतरूप समुद्र मां, धोया छतां जातो नथी,
तेनुं कहो कारण तमे, बचुं केम हुँ आ पाप थी. ||14||

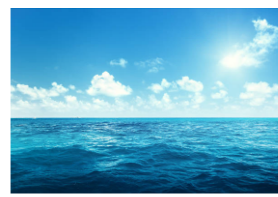

सुंदर नथी आ शरीर के, समुदाय गुण तणो नथी,
उत्तम विलास कलातणो, देदीप्यमान प्रभा नथी ।
प्रभुता नथी तो पण प्रभु, अभिमान थी अक्कड फरूं,
चोपाट चार गति तणी, संसार मां खेल्या करूं .... ||15

आयुष्य घटतुं जाय तो पण, पापबुद्धि नव घटे,
आशा जीवन नी जाय पण, विषयाभिलाषा नव मटे ।
औषध विषे करुं यत्न पण, हुं धर्म ने तो नव गणुं,
बनी मोह मां मस्तान हुं, पाया विनाना घर चणुं ||1611

आत्मा नथी परभव नथी, वळी पुण्य पाप कशुं नथी,
मिथ्यात्वी नी कटु वाणी में, धरी कान पीधी स्वाद थी।
रवि सम हता ज्ञाने करी, प्रभु आपश्री तो पण अरे!
दिवो लई कुवे पड्यो धिक्कार छे मुज ने खरे ||17||

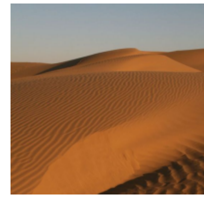

में चित्तथी नहीं देव नी, के पात्र नी पूजा चहीं।
ने श्रावकों के साधुओं नो, धर्म पण पाळ्यो नहीं।
पाम्यो प्रभु ! नरभव छतां, रण मां रड्या जेवुं थयुं,
धोबी तणा कुत्ता समुं, मम जीवन सहु एळे गयुं...... ||18||

हुं कामधेनु कल्पतरू, चिंतामणिना प्यार मां,
खोटा छतां झंख्यो घणुं, बनी लुब्ध आ संसार मां।
जे प्रगट सुख देनार त्हारो, धर्म ते सेव्यो नहीं,
मुज मूर्ख भावों ने निहाळी, नाथ कर करुणा कंई ||19||

में भोग सारा चिंतव्या, ते रोग सम चिंतव्या नहीं,
आगमन इच्छयुं धनतणुं, पण मृत्यु ने प्रीछयुं नहीं।
नहीं चिंतव्युं में नर्क काराग्रह समी छे नारीओ,
मधुबिंदु नी आशा महीं, भयमात्र हुँ भूली गयो ||20||

हुं शुद्ध आचारो वडे, साधु हृदय मां नव रह्यो,
करी काम पर उपकार ना, यश पण उपार्जन नव कर्यो,
वळी तीर्थना उद्धार आदि, कोई कार्यो नव कर्या,
फोगट अरे आ लक्ष चोराशी तणा फेरा फर्या ||21||

गुरुवाणी मां वैराग्य केरो, रंग लाग्यो नहीं अने,
दुर्जनतणा वाक्यो महिं, शांति मळे क्याथी मने ?
तरु केम हुँ संसार आ, अध्यात्म तो छे नहीं जरी,
तूटेल तळिया नो घडो जळ थी, भराए केम करी ...... ||22||

में परभवे नथी पुण्य कीधुं, ने नथी करतो हजी,
तो आवता भव मां कहो, क्यां थी थशे हे नाथजी?
भूत भावीने सांप्रत त्रणे, भव नाथ हुं हारी गयो,
स्वामी त्रिशंकु जेम हुं, आकाश मां लटकी रह्यो ||23||

अथवा नकामुं आप पासे, नाथ! शुं बकवुं घणुं?
हे देवता ना पूज्य! आ चारित्र मुज पोता तणुं।
जाणो स्वरूप त्रण लोक नुं, तो माहरुं शुं मात्र आ?
ज्यां क्रोडनो हिसाब नहीं, त्यां पाइनी तो वात क्यां ? ||24||

(शार्दुल विक्रीडित छंद)
ताराथी न समर्थ अन्य दीननो, उद्धारनारो प्रभु,
मारा थी नहीं अन्य पात्र जग मां, जोतां जडे हे विभु।
मुक्ति मंगलस्थान होय, मुज ने इच्छा न लक्ष्मी तणी,
आपो सम्यगरत्न श्याम जीव ने, तो तृप्ति थाये घणी .. ||25||

हमें तो समकित रूपी लक्ष्मी चाहिए

बड़ी साधु वंदना (1-15)

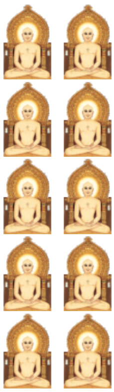

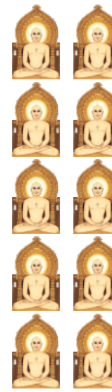

नमुं अनंत चौवीसी, ऋषभादिक महावीर ।
जेणे आर्य क्षेत्र मां, घाली धर्म नी सीर ।।1।।

महाअतुल-बली नर, शूर-वीर ने धीर ।
तीरथ प्रवर्तावी, पहुंच्या भव-जल-तीर ।।2।।

सीमंधर प्रमुख, जघन्य तीर्थंकर वीस ।
छे अढ़ीद्वीप मां, जयवंता जगदीश ।।3।।

एक सौ ने सित्तेर, उत्कृष्ट पदे जगीश ।
धन्य मोटा प्रभुजी, तेह ने नमाऊँ शीश ।।4।।

केवली दोय कोड़ी, उत्कृष्टा नव क्रोड़ी ।
मुनि दोय सहस्त्र क्रोड़ी, उत्कृष्टा नव सहस्त्र क्रोड़ी ।।5।।

विचरे छे विदेहे, मोटा तपसी घोर ।
भावे करी वंदुं, टाळे भव नी खोड़ ।।6।।

चैवीसे जिन ना, सघळा ए गणधार ।
चौदसौ ने बावन, ते प्रणमुं सुखकार ।।7।।

जिनशासन-नायक, धन्य श्री वीर जिणंद ।
गौतमादिक गणधरे, वर्ताव्यो आनंद ।।8।।

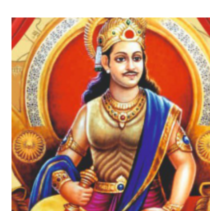

श्री ऋषभदेव ना, भरतादिक सो पुत्र ।
वैराग्य मन आणी, संयम लियो अद्भूत ।।9।।

केवळ उपराज्युं, करी करणी करतूत ।
जिनमत दीपावी, सघळा मोक्ष पहुंत ॥10॥

श्री भरतेश्वर ना, हुआ पटोधर आठ ।
आदित्यजशादिक, पहुंच्या शिवपुर-वाट ॥11॥

श्री जिन-अंतर ना, हुआ पाट असंख्य ।
मुनि मुक्ति पहुंच्या, टाळी कर्मना वंक ॥12॥

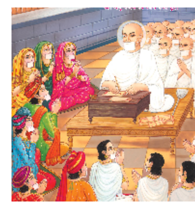

धन्य कपिल मुनिवर, नमी नमुं अणगार ।
जेणे तत्क्षण त्याग्यो, सहस-रमणी-परिवार ॥13॥

मुनि बल हरिकेशी, चित्त मुनीश्वर सार ।
शुद्ध संयम पाळी, पाम्या भव नो पार ॥14॥

वळी इक्षुकार राजा, घेर कमळावती नार ।
भग्गू ने जशा, तेहना दोय कुमार ॥15॥

हे भगवान!
स्तव-स्तुतिमंगल करने से जीव को कया लाभ होता हैं?

स्तव-स्तुतिमंगल से जीव को ज्ञान, दर्शन, चरित्र स्वरुप बोधिलाभ की अर्थात् श्रुत चरित्र धर्म की अभिरूची होती हैं। ज्ञान-दर्शन-चरित्र स्वरुप बोधिलाभ से संपन्न जीव को अंतक्रिया योग्य अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने योग्य आराधना प्राप्त होती हैं अथवा वैमानिक देवरूप उत्पन्न होने योग्य आराधना वह करता हैं।

तीन मनोरथ

(ज्योत से ज्योत जगाते...)

धन्य ऐसे क्षण कब मिले, मन के मनोरथ कब फले...
पाप भरा है जीवन मेरा, आरंभ का नहीं पार...
ममता मेरी अजबगजब की, परिग्रह हैं अपार...
आरंभ परिग्रह जब घटे, पहला मनोरथ तब फले... धन्य...

मुनि को देख मस्तक झुके, संत हैं कितने सद्भागी...
पाप की वृत्ति-पाप प्रवृत्ति, सबकुछ जिन्हों ने त्यागी...
ऐसा मुनित्व जब मिले, दूसरा मनोरथ तब फले... धन्य

अंत समय ना कोई बंधन सताए
देह को भूले, आत्मआराधना होए
ऐसा पंडित मरण जब मिले, तीसरा मनोरथ तब फले... धन्य

मात्र मनोरथ तीन मेरे, हे प्रभु पूर्ण करना...
मोह प्रभाव से, अन्य इच्छा दिल में ना उठना...
आप कृपा से मुक्ति मिले, मन के मनोरथ सब फले... धन्य...

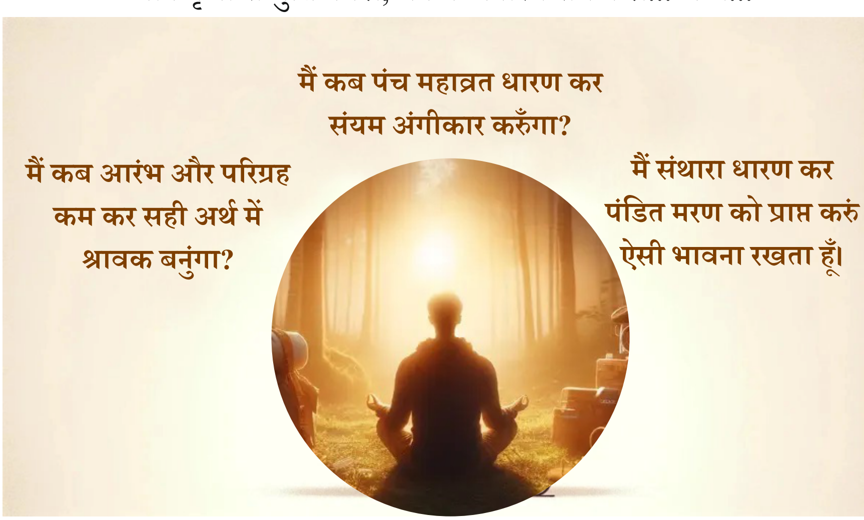

||श्री महावीराय नमः|| ||श्री वितरागाय नमः|| ||श्री नमो नाणस्सः||

श्री ग्रेटर बॉम्बे वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ

Shree Greater Bombay Vardhman Sthanakvasi Jain Mahasangh

: प्रबंधित :

मातुश्री मणिबेन मणशी भीमशी छाडवा धार्मिक शिक्षण बोर्ड

Matushree Maniben Manshi Bhimshi Chhadva- Dharmik Shikshan Board,

Aaradhya one Earth. Gr floor, H wing, Naidu colony, Pantnagar, Ghatkopar (East), Mumbai 400075

E-mail: jainshikshanboard@gmail.com **Website : www.jainshikshan.org**

Our Website

- Contact Details of Shikshan Board office (Phone & Email)
- News and events related to examination and breaking news
- Know Goals and Visions of Board
- Facility to enroll for forthcoming exam online
- Historical exams and answer papers available from 2016
- Download online shreni books
- Schedule of forthcoming Shreni exams available
- Access Photographs of various events
- View Past exams results

हमारी वेबसाइटसे

- शिक्षण बोर्ड कार्यालय के संपर्क विवरण (फोन और इमेल)
- परीक्षा और ब्रेकिंग न्यूज से संबंधित समाचार और कार्यक्रम।
- बोर्ड के लक्ष्यों और द्रष्टिकोणों को जानें।
- आगामी परीक्षा में ऑनलाइन नामांकन करने की सुविधा।
- 2016 से परीक्षा के प्रश्नपेपर्स और उत्तर पत्र उपलब्ध हैं।
- प्रत्येक श्रेणी का पाठयक्रम डाउनलोड किया जा सकता है।
- परीक्षा की जानकारी समय पर मिल सकेगी।
- विविध आयोजनों की तस्वीरें उपलब्ध है।
- भूतकाल में दी गई परीक्षा के परिणाम जान सकेंगे।

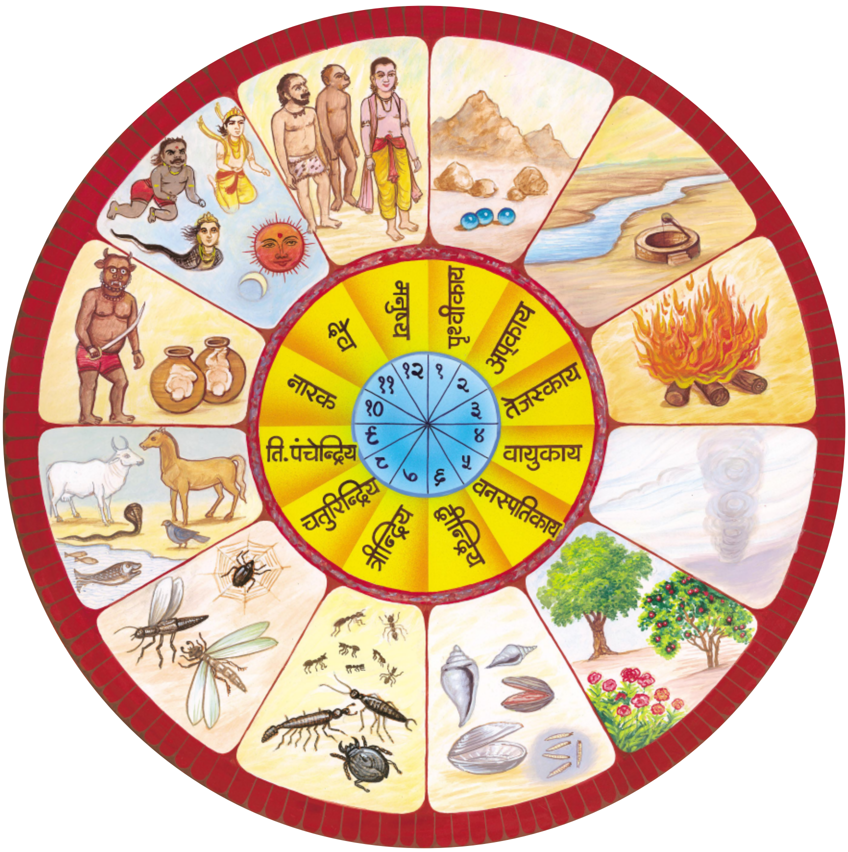

मनुष्य
पृथ्वीकाय
अप्काय
तेजस्काय
वायुकाय
वनस्पतिकाय
द्वीन्द्रिय
त्रीन्द्रिय
चतुरिन्द्रिय
ति. पंचेन्द्रिय
नारक
देव

मोक्षमार्ग
ज्ञान
दर्शन
चारित्र
तप